प्रकाशक
भगवानदास केला,
व्यवस्थापक
भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

प्रथम संस्करण १२५० प्रतियाँ	सन् १६३६ ई०	मूल्य दस आने

मुद्रक
त्रिभुवननाथ शर्मा,
जमुना प्रिन्टिग वर्क्स
मथुरा

अपनी बात

राजनैतिक और आर्थिक साहित्य प्रकाशित करने वाली भारतीय ग्रन्थमाला में यह कहानियों की पुस्तक क्यों ? भारतीय शासन, निर्वाचन पद्धति, भारतीय राजस्व और भारतीय अर्थशास्त्र आदि के साथ इस कृति क्या मेल ? यदि ऐसे प्रश्न का उत्तर देना हो, तो निवेदन है कि हमारा उद्देश्य नागरिकता के भावों का प्रचार करना है; हम चाहते हैं कि प्रत्येक गांव और नगर मे, हर एक जाति तथा सम्प्रदाय के छोटे-बडे सब व्यक्ति नागरिक धर्म का पालन करें। हमारे साहित्य-कार्य का प्रधान लक्ष्य नागरिक शिक्षा रहा है, यह जिस प्रकार, जिस रीति से भी हो सके, अभिनन्दनीय है; उपन्यास, नाटक, कहानी, सम्भाषण ('डायलॉग'), सिनेमा, रेडियो आदि द्वारा जो सस्थाएँ नागरिक शिक्षा का कार्य सम्पादन करती हैं, उन से उस अंश तक हमारो सहानुभूति है, और होनी ही चाहिए।

कुछ समय से मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि निर्वाचन, मताधिकार, ग्राम-सुधार अस्पृश्यता-निवारण, साक्षरता-प्रचार आदि नागरिक समस्याओं पर विचार करने के लिए जिन पाठकों को हमारी अन्य पुस्तकें समुचित रूप से आकर्षित नहीं करतीं, उन की रूचि का ध्यान रखते हुए, उन के लिए यह विषय कहानियों द्वारा उपस्थित किया जाय। संयोग से मेरे परिमित क्षेत्र में भी ऐसे मित्रों का अभाव नहीं था जो कहानी-लेखक के नाते काफ़ी प्रसिद्ध हैं। मैंने पहले एक अन्य मित्र से अपनी इच्छा प्रकट की। उन्हों ने मेरे विचार की कद्र की, तथापि वे

इस को क्रियान्वित न कर सके। फिर, मैंने सुहृद्वर श्री० सत्येन्द्र जी से याचना की। आपने बहुत कुछ व्यस्त होते हुए भी मेरी बात स्वीकार कर ली, और उसी के फल-स्वरूप आज पाठकों की सेवा में यह कृति उपस्थित करने का सुअवसर आया।

श्री० सत्येन्द्र जी कुछ पाठकों के लिए अपरिचित होंगे, और, आत्म-विज्ञप्ति के इस युग में उनका ऐसा होना आश्चर्यजनक या अस्वाभाविक भी नहीं। तथापि जानने वाले यह भली भांति जानते हैं कि आपने इस समय तक उपन्यास, नाटक, साहित्य, इतिहास, समालोचना आदि विषयों पर फुटकर तथा पुस्तक रूप में कितना लिखा; हिन्दी लेकर बी. ए., एम. ए., की परिक्षाओं मे बैठने वालों की कितनी सहायता की; मथुरा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य-रत्न तैयार करने में कितना योग दिया, और कितने भावी साहित्यकों का पथ-प्रदर्शन किया। मुझे डर है कि कुछ सज्जनों की दृष्टि में यह पुस्तक आपकी योग्यता की यथेष्ट परिचायक न हो। कहानी कला के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। तथापि सम्भवतः मेरा यह निवेदन क्षम्य होगा कि किसी उद्देश्य विशेष को लेकर कार्य करने में, कलाकार को अपनी कला प्रदर्शित करने का यथेष्ट क्षेत्र नहीं रहता; उस पर कुछ बन्धन आ जाता है, उसकी कल्पना स्वतन्त्र विचरण नहीं कर पाती। मैं श्री० सत्येन्द्र जी से केवल सुन्दर या मनोरजक कहानियां लिखाना नहीं चाहता था। यद्यपि अच्छी कहानियां भी साहित्य में अपना यथेष्ट महत्व रखती हैं, पर भारतीय ग्रन्थमाला को अभी अपने विशेष क्षेत्र के कार्य से ही छुटकारा नहीं कि वह साहित्य के इस अंग

की वृद्धि में भी भाग ले। अस्तु, मैं तो यही चाहता था कि पाठकों के लिए नागरिकता के ही ज्ञान की सामग्री दी जाय; हां, वह हो कहानियों के रूप मे। मेरी इस इच्छा की पूर्ति करने में अच्छे अच्छे लेखकों को भी कुछ झिझक सी थी। श्री० सत्येन्द्र जी ने इस इच्छा की पूर्ति की। अतः आपकी कृति से मुझे तो प्रसन्नता है, सन्तोष है।

यह पुस्तक पाठकों के लिये तो अपने विशेष ढंग की सामग्री उपस्थित करती ही है। साथ ही यह योग्य कहानी-लेखकों के लिए एक प्रकार का निमन्त्रण है कि वे इस ओर भी अपनी योग्यता से लाभ पहुँचावे। यदि इस रचना ने नागरिकता के भावों की वृद्धि में सहायता दी, और यदि अन्य लेखकों तथा प्रकाशकों द्वारा भी इस तरह की कृतियां प्रस्तुत की गयीं, तो हमें अत्यन्त हर्ष होगा।

श्री० विद्याभूषण जी एम ए, साहित्य रत्न, मथुरा, ने इस रचना पर एक दृष्टि डालते हुए कुछ विचार-पूर्ण पंक्तियां लिखने की कृपा की है, तदर्थं हम आपके कृतज्ञ हैं।

विनीत

भगवानदास केला

एक दृष्टि—

इन कहानियो को मै ध्यान से देख गया ,हूँ। कहानी मे लोकोत्तर आनन्द पाने की अभिलाषा रखते हुए भी मुझे, इनमे एक विशेष रस मिला। "कला कला के लिये" मत को मानने वाला पाठक शायद इन कहानियो मे "टेकनीक" का अभाव देखे, परन्तु इस प्रकार देखना पुस्तक और लेखक दोनो के प्रति अन्याय होगा। "नागरिक कहानियाँ" एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई है। मेरा विचार है कि यदि लेखक के उद्देश्य को स्वीकार कर लिया जाय तो, यह पुस्तक हिन्दी मे अभी तक अद्वितीय है। अपने क्षेत्र मे, यह एक अभूतपूर्व रचना है। किसी उद्देश्य को साथ रखकर लिखी हुई कहानियो मे यह साहित्यिक-सौन्दर्य मैंने और कही नहीं देखा।

भारत मे कहानी का उद्गम एक विशेष उद्देश्य को लेकर ही हुआ। उपनिषद् की कथाओ मे हमे गम्भीर दार्शनिक तत्व समझाये गये हैं। पञ्चतन्त्र और हितोपदेश की कहानियो का उद्देश्य मनोरंजन ही नहीं था, उनकी सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है—उनमे धार्मिक तथा नैतिक बातो को अपने पूरे हल्केपन के साथ रख देने की क्षमता। और, आज की मनोवैज्ञानिक कहानी ही क्या एक उद्देश्य को लेकर नही चलती? विचारपूर्ण परि-स्थितियो की सहायता से मनुष्य के अचेतन मस्तिष्क का चित्र खींच देना ही वर्तमान कहानी का उद्देश्य है।

"नागरिक कहानियाँ" पढ़ते समय यही कुछ भाव मेरे मन मे उठते हैं। भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियो मे नागरिकता को धर्म मानने की विशेष आवश्यकता है। नागरिक जीवन के विभिन्न पहलुओ और समस्याओ को सीधे सरल रूप मे अल्प-शिक्षित जनता के सामने रख देना ही इन कहानियो का उद्देश्य है। इन कहानियो मे जो बात कही गई है, वह लेखक के सामने, स्पष्ट है। साथ ही, सोद्देश्य लिखी हुई होने पर भी इनमे अनुभूति का स्पर्श और प्रतिभा की चमक है। प्रगतिशील भारतीय राष्ट्र के लिए यह कहानियाँ नवीन जीवन प्रदान करेगी और इनसे राष्ट्र-भाषा मे एक नव निर्माण का शिलान्यास होगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

विद्याभूषण अग्रवाल,

एम. ए., साहित्य-रत्न

जिनके

स्नेह-कल्पवृक्ष की वरद छाया में
मैंने 'मैं' कहलाने का अधिकार
पाया है, जीवन-ज्योति देखी है,
और मेरा जो कुछ है, वह सब भी
जिनके अतुल आशीर्वाद से ही है

उन्हीं

परम पूज्य, साधुमना,

पिता

मुंशी दुर्गाप्रसाद जी

के

देव-तुल्य चरणों

में

समर्पित

—सत्येन्द्र

विषय सूची

१

उज्ज्वल प्रभात

बहुत पुरानी बात है। एक दिन कुछ आदमियो का समूह वनो-बीहड़ो को, पहाड़ों-पर्वतो को, नदी-नालो को पार करता हुआ एक मैदान मे आ बसा। उनके साथ कुछ जानवर थे। ये लोग कपड़े लत्ते पहनना नही जानते थे। सीप-घोघो से बुरी भांति अपना शरीर सजाये हुए थे, वैसे शरीर पर छाल भी नहीं थी। ये लोग पेड़ो के नीचे ठहर गये। पेड़ फलो के थे। मैदान मे घास फूंस भी उगा हुआ था। उनके पशु वहां रहकर मोटे ताज़े होने लगे। उनसे पैदावार बढ़ी। अब उन लोगों ने वहीं पड़ाव डाल दिया। पेड़ो से शाखाऐ काट काट कर अपने लिये

झोपड़ियां बनाकर ये लोग उनमे रहने लगे। सभी लोग स्वतन्त्र, निर्भीक और बलवान् थे। किन्तु सुदास उन सबमे बलवान् था। बात यह थी कि वह दिमाग वाला आदमी था। वह सोचता था कि पशुओ की रखवाली कौन करे? इस लिये यह अपने पशुओ को दूसरे चरवाहो के गोल मे मिला देता और आप मौज से किसी पेड़ पर चढ़कर मीठे मीठे फल खाता। चिड़ियो के चह-चहाने की नक़ल करता। कभी कोकिल के स्वर-सा अपना स्वर बनाकर राग अलापता। इस प्रकार दिन भर मौज करता। जब भूख लगती गायो को दुह कर चुपचाप पी जाता। बच्चो पर तो वह बहुत ही हावी होरहा था। वे उससे प्यार भी करते और डरते भी थे। वह दिन भर यो ही घूमता और शाम को आकर किसी भी आदमी से भोजन छीनकर खा जाता था। किसी को हिम्मत न थी कि उससे चूं भी करता। वह एक और नटखटपन करता। उसने अपने लिये कोई झोपड़ी नही बनाई थी। उसके पास कोई सामान था ही नही। कुछ जानवर थे सो उन्हें भी दूसरो के गोल मे मिलाकर बेफिक्र हो जाता था। अतः कोरा फाकानन्द था। तो गर्मी मे तो राते बड़े सुख से बीतती थी किन्तु वर्षा और जाड़ो मे मैदान मे घास पर पड़कर सुख की नींद नही ली जा सकती थी। उन दिनो उसे नींद भी बहुत आती थी। झोपड़ी बनाये कौन? वह यह करता कि किसी भी झोपड़ी में घुस जाता और बरसात मे या जाड़ो मे वहां के रहने वालो को निकाल बाहर करता। यदि वे न निकलना चाहते तो लट्ठ तानकर

खड़ा हो जाता, और एक दो को मार भी डालता। सभी लोगो के रोगटे खड़े हो जाते थे। वे दूसरो का मरना देखकर दुखी न होते थे, वरन् यह सोचकर कि कल यह इसी तरह हमारे ऊपर भी दौड़ेगा। किन्तु उस दुःख का कोई इलाज न था। सुदास का डर जैसे जैसे उस समुदाय मे बढ़ता गया वैसे वैसे ही उसका नटखटपन भी बढ़ता गया। अब उसे अपने नटखटपन मे आनन्द भी आने लगा था। उसने लड़ लड़ कर दूसरो के पशु छीन लिये। उनको उनके झोपड़ो से निकाल कर उसमे अपने पशु बॉधता। उसे देख कर और भी बहुत से उसके साथी बन गये। वह जो हुकुम देता वे सब उसका पालन करते।

एक दिन यह झगड़ा बहुत ही बढ़ गया। सुदास जितना शैतान था भृगु उतना ही भोला। उस गिरोह के सब लोग उसे प्यार करते थे। वह सभी का काम करने को तैयार रहता था। उससे कभी किसी को दुःख नही पहुँचता था। सभी के सुख मे उससे सहायता मिलती। किसी का भी बिगाड़ उसे भाता न था। उस दिन मान्धाता की गाये जंगल मे भटक गई थी तो भृगु ही अपना सब काम धाम छोड़ कर उन्हे ढूंढने जंगल मे चक्कर लगाता फिरा था; और वह भी, उसने एक गाय को तो जान पर खेलकर बचाया था। गाय के खोजो को देखता देखता वह जंगल मे घुस गया था। वहां उसने देखा कि एक शेर गाय पर झपटना ही चाहता है। उसने पत्थर के दो नोकदार टुकड़े झटपट उठा लिये और ऐसा अचूक निशाना बांधकर पूरी ताकत से उनको

फेका कि उसकी मशाल सी आंखो मे वे घुस गये। अन्धा शेर अन्दाज़ से कुछ उछला भी किन्तु दर्द से चीख़ कर आधी दूर पर कूदकर अपना सिर हिलाता भाग गया। यह बात सारे समूह मे फैल गई; इसने भृगु की क़दर और बढ़ा दी।

वह बूढ़ो का सहारा था, बच्चो का सखा था, गृहस्थियो का हितैषी था; स्त्री-बच्चे, बड़े-बूढ़े सभी उसे चाहते थे। उस समूह का नायक भी उससे खुश था। तो एक दिन क्या हुआ कि सुदास की दृष्टि उसके घर पर पड़ गई। वह उसके मकान की ओर लपका। रास्ते मे एक पड़ौसी के दो लड़के मिल गये। सुदास को समय काटने के लिये कुछ खिलौनो की ज़रूरत थी। वह मिट्टी आदि के खिलौनो को पसन्द नही करता था। अपने कठोर पञ्जो मे एक एक हाथ से उसने उन बच्चों को पकड़ लिया। वे कैं कैं करते हुए उसके दोनो ओर किढ़रते चले। भृगु के मकान के पास पहुँचकर एक लात मे दरवाज़ा तोड़कर वह दरवाज़े की चौखट पर बैठ गया। उन दोनो बच्चो के सिर लड़ा दिये, उनको रोता देख कर वह हँसने लगा। भृगु मकान मे नही था। थोड़ी देर में वह वहाँ आया। उसने जो यह दृश्य देखा तो उसका ख़ून ठण्डा होगया। आज क्या होना है? वह सुदास के पास पहुँचा और कहा, "यह क्या कर रहे हो? बच्चो को छोड़ो और कहीं अन्यत्र जाओ।" भृगु ने यह ज़रा कड़कड़ाती आवाज़ मे कहा था। जो कभी अपनी मनकी मौज मे बाधा का आदी नही हो उसे क्रोध आ ही जाता है। आज ज़रासी खरी आवाज़ ने सुदास

के कानो मे प्रवेश नही किया था। वह चौंका। बच्चो का सिर लडा लडाकर उनके चीखने और रोने और हाथ पैर फैंकने के बेबसी के व्यापार ने उसके बर्बर उल्लास को इस समय पूरी तरह उभार रक्खा था। उल्लास तो क्रोध में परिवर्तित होगया। बर्बरता बनी हुई थी। उसने मुट्ठियाँ ढीली करके बच्चो की गरदन तो छोड़ दी, भड़भड़ा कर दोनो हाथ बढ़ाकर भृगु की गरदन पर मारे। भृगु बेहोश होकर गिर पड़ा। सुदास का पाशविक व्यापार और भी बढ़ गया। वह अंकुश जानता ही न था। उसने भृगु की झोपड़ी नोच फैकी। पागलो की भांति उसकी वस्तुऐ इधर उधर फैक दी। झोपड़ियो मे से और लोग निकल कर बाहर झॉकने लगे, भृगु की उस दारुण व्यथा और अवस्था को देखकर वे रो पड़े। उसका प्यारा झोपडा उन्होने अपनी आंखो से उजड़ता देखा। उन्होने देखा कि सुदास इतना भारी काम करके भी इठलाता हुआ धीरे धीरे उनकी आंखो के सामने से जंगल मे ओझल होगया। भृगु की दुरवस्था की खबर सारे समूह मे फैल गई। बालक-बच्चे, स्त्री-पुरुष सब उसे देखने जुड़ आये। और उस दिन पहली बार उन लोगो ने अनुभव किया कि हमे दूसरे की हानि से दु:ख होता है। और ऐसा आदमी जो दु:ख पहुँचाता है अच्छा नही। उन्होने सोचा कि सुदास को ऐसा व्यवहार बच्चो और भृगु के साथ क्यो करना चाहिये? उसकी झोपड़ी और चीजो को उसने इस प्रकार क्यो तोड़ फैका? भृगु ने क्या बिगाड़ा था, वह सीधा-सादा भला आदमी उसने क्यो सताया?

बौहरे खेमचन्द जी एक नामी गिरामी रईसो मे से हैं। वैसे किसी को दान दक्षिणा देना आप धर्म के खिलाफ काम समझते है, किन्तु कलक्टरो, कमिश्नरो, गवर्नरो को दावत मे लाखो रुपये खर्च करते आप कभी नहीं हिचके। साहबो की सेवा आपका मुख्य धर्म है। आप समझते हैं कलियुग मे सरकारी साहब ही भगवान के अवतार है। और क्यो न हो जिनके पास शक्ति है वही पूजनीय है। इन साहबो का भी बौहरे जी को भरोसा था। अब तक जो इन पर इतने खर्च किये हैं वह किस दिन काम आयेगे। उन्हे अपनी विजय के स्वप्न दिखाई पड़ रहे थे। दीनानाथ है किस गिनती मे। खाने पीने भर को है नही असेम्बली मे जायँगे! देश-सेवा का घमण्ड है, पर उसे कौन पूछता है। बौहरे जी अपने आपको बड़ा पक्का व्यापारी समझते थे। उन्हे यह गर्व था कि दुनियाँ को इन्होने जैसा समझा है वैसा कोई क्या समझेगा और दीनानाथ की तो गिनती ही क्या है? उन्होने यह भली भॉति समझ लिया है कि रुपये के सामने दीनानाथ की देश-सेवा रक्खी रह जायगी। पोलिंग की जगह एक ऐसा अच्छा खुशनुमा शामियाना लगाया जायगा कि देखकर लोगो का मन स्वयं आकर्षित होजाय। बिना बुलाये भीतर चले आवे। अच्छी से अच्छी तवायफो को निमन्त्रण दे दिया गया था। पोलिंग से एक दिन पहले रात को उसी खेमे मे उनका नाच होगा। इस तरह गॉव के लोग उनकी ओर झुक जायँगे। अच्छे अच्छे चित्र उसमे टॅगे होने चाहिये। सबसे बड़ी अंग्रेजी फर्म को सजावट की आज्ञा दे

दी गई है। और पास फुलवाड़ी भी लगवाई जायगी। कुछ शराब, भंग का इन्तज़ाम रहेगा ही । बौहरे जी ने मुनीमजी को बुलाकर यह ताकीद कर दी कि इस मामले मे वे हाथ खींचकर काम न करें। इसी समय उनके एक गुमाश्ता वहां आए। बौहरे जी ने उससे पूछा, कहो क्या हाल है ?

गुमाश्ते ने कहा—दीनानाथ की ओर से गॉव गॉव मे सभाऐ करना निश्चय हुआ है। हमारी ओर से भी कुछ होना चाहिये।

बौहरे जी कुछ अन्यमनस्क होते हुए बोले—सभा वभा में क्या धरा है। क्यो मुनीम जी, रुपये का जादू जब सर पर चढ़ेगा तो एक एक किसान तुम्हारा चेला हो जायगा।

गुमाश्ते ने समझा बौहरे जी शायद नाराज़ हो रहे हैं तो बोला—नही मेरे कहने का यह मतलब था कि हमारी ओर से भी उसका जवाब होता रहे तो अच्छा है।

बौहरे जी को सभा मे विश्वास न हो सो बात नही, पर उनका बडप्पन और अमीरी उन्हे कैसे इजाज़त दे कि अपने आसामियो मे जाकर कुछ खुशामद करे। वे तो इतना समझते थे कि वे मालिक हैं, ज़मीदार है, उनकी रिआया को उन्हे अपने आप बिना कहे राय देनी चाहिये। अधिक से अधिक वे उसे रुपया देकर ख़रीद लेंगे। वे वोटो की भीख क्यो मांगे ? उन्होने कठोर मुद्रा मे कहा—बौहरा खेमचन्द भीख नही मॉगेगा, वह अहसान

नहीं लेगा। वह तो चाहता है कि लोग उसको वोट भी दें और उसका अहसान भी मानें।

उसी समय एक आदमी ने जाकर एक लाल पर्चा बौहरे जी के सामने रक्खा। बौहरे जी ने थोड़ी पलके ऊपर उठाते हुए कहा—"क्या है ?"

उस आदमी ने हाथ जोड़कर कहा—"दीनानाथ की ओर का एक आदमी यह बाँट रहा था। मैं ले आया।" गुमाश्ते ने पर्चा उठाकर पढ़ा—

"अपनी एक अमूल्य राय
अपने सच्चे हितैषी
श्री दीनानाथ एम० ए० को दीजिये

वे असेम्बली मे जाकर आपके हित के लिए लड़ेगे। ज़मीदारो के अत्याचारो, महाजनो के क़र्ज़, मालिको के अत्याचार तथा लगान आदि से वे आपको बचाऐंगे।

अवश्य अपनी एक राय उन्हे ही दें।"

बौहरे जी ने कहा—हां, विज्ञापन निकालो। और अगर ज़रूरत समझो तो सभा भी कर डालो, पर अच्छा तो यह है कि जहां दीनानाथ की सभा हो वहां रण्डियो की महफिल करा डालो, लोग सभा मे जायँ ही नहीं और अपना नाम हो जाय।

गुमाश्ता जी ने अपने मोटे चश्मे वाली आंखों को नीचे

झुकाकर ऊपर की कोर से देखते हुए मनमें सोचा, बौहरे जी दुनियां की नई हालत से नावाक़िफ हैं। हम क्या करे ?

डांकिया भी आ पहुँचा। उसने एक अख़बार बौहरे जी को दिया। बौहरे जी ने उलट पुलट कर उसे देखा। उसमे एक जगह लिखा हुआ था, सरगमा गांव के लोगो ने दीनानाथ को वोट देना निश्चय किया है। बौहरे खेमचन्द की कोशिशे अब तक बेकार गई है—उसे पढ़कर बौहरे जी का मुख फीका पड़ गया। उन्होने कुछ कठोर दृष्टि गुमाश्ता पर डालते हुए कहा, क्यो जी तुम तो परसो कह रहे थे कि सरगमा सोलहो आना हमारा है। यह ख़बर कहती है वह दीनानाथ का होगया। गुमाश्ते ने अपने चश्मे को नाक पर खिसकाते खिसकाते कहा, यह अभी आज कल मे ही परिवर्तन हुआ है। उस दिन तो सब यही कह रहे थे कि बौहरे जी हमारे अपने हैं। हम उन्ही को राय देगे। इस समाचार को सुनकर बौहरे जी अधिक चुप बैठे न रह सकते थे। उन्होने ख़ुद जाकर नब्ज देखने का इरादा किया। मोटर बुलाई गई और वे गॉव को चल दिये।

(२)

सरगमा शहर से दूर बिल्कुल भीतरा एक गॉव है। बौहरे जी की जमीदारी मे तो है किन्तु इतना दरिद्र है कि उसे अपने ज़मीदार से कोई हार्दिक प्रेम नहीं रह गया। जिस समय बौहरे जी के गुमाश्ता गॉव मे गये थे बड़े प्रेम से मिलकर सब गॉव वालो को

समझाया था कि वे अपनी राय बौहरे जी को दे। गॉव वाले राय का मतलब ठीक न समझते थे। उन्हे जब यह समझा दिया कि कोई ख़र्च-वर्च की बात नही तो उन्होने सोचा अपने ज़मीदार है, हम उनकी रिआया है। हमारा धर्म है कि हम उनकी मदद करे। वे जो चाहते हैं हम करदें। अगर मेह न पड़े, अकाल हो जाय तो उसमे बेचारे ज़मीदार का क्या खोट, अपने करम को कोसो। जमीदार लगान वसूल न करे तो फिर सरकार को क्या दें? आखिर उस बेचारे को भी तो देना पड़ता है। उसके प्यादे कुछ ज़ोर ज़बर करते है तो वे करना ही चाहे, हम ही कौन उनसे सीधे मुँह बोलते हैं—हमारा अभाव हमारे सारे रस को चूस लेता है। ज़मीदार तो हमारा माई-बाप है। हमारे दादा परदादा ने उसकी ज़मीन जोती है। उसका नमक खाया है, और नमक हलाल किसान धार्मिक आवेश मे आकर कह गया कि उन्ही को वोट देंगे, सोलहो आने गाँव उनका है। किन्तु काम मे लग जाने से वात्सल्य का उफान ठण्डा होगया, संसार की कठिन वास्तविकताओ से संघर्ष करने मे हृदयावेगो से काम नही चलता। फिर किसान राय के पचड़े को भूलकर मिट्टी गोड़ भोजन जुटाने की धुन मे लग गया। इस बार उसकी नीद को दीनानाथ के एजेण्टो ने तोड़ा। एक दिन वे कुछ भजन-मण्डलियां ले मोटर से गाँव मे आ धमके। फर्श बिछा दिया गया और भजन होने लगा। उसकी ध्वनि गाँव मे एक ओर से दूसरे छोर तक व्याप्त होगई। धीरे धीरे गाँव के सभी लोग वहां आ डटे।

लोग यह जानने को उत्सुक थे कि यह क्या होरहा है और क्यो हो रहा है ? कोई और प्रपंच है क्या ? क्या ठगने का कोई नया रास्ता निकाला गया है ? जब सैकड़ो उत्सुक आंखे दीनानाथ के आदमियो की ओर ऐसे प्रश्नो के साथ देख रही थी, तभी भजन खतम हुआ और एक महाशय बोलने लगे—

" प्यारे भाइयो ! आप यह जानना चाहेगे कि हम लोग यहां क्यो आये है ? हमारा उद्देश्य आपको आपके एक मतलब की बात समझाना है, जिसे बिना समझे आप अपने पैरो मे कुल्हाड़ी मार सकते है। वह बात है ' राय ' के सम्बन्ध मे। क्या आप जानते है राय से क्या होता है ? वह कैसे दी जाती है ? उसका फल क्या होता है ? उससे आपका क्या लाभ और क्या हानि हो सकती है ? "

बात लोगो के दिल की थी। उस दिन जब गुमाश्ता जी ने उन्हे गोल मोल कुछ समझाया था तब वे ठीक कुछ न समझ सके थे। वे आश्चर्य कर रहे थे कि अब तक तो जमीदार को हमसे लकड़ी, घी, अन्न, शाक, लगान आदि की जरूरत पड़ती थी अब यह ' राय ' क्या चीज़ है जो हमसे वे चाहते है। फिर भी बातो से उन्हे यह आभास हो गया था कि यह चीज है कुछ काम की। आज उसी पर कुछ सुनने के लिये वे उत्कण्ठा से खिसक कर सिमिट कर और भी वक्ता महोदय के पास हो रहे। उन्होने कहा— " हम नहीं जानते ' राय ' क्या है ? " तब वक्ता ने कहा, धैर्य

से सुनिये, मैं आपको यही बतलाने आया हूँ। सरकार ने एक ऐसी सभा बनाई है जिसमे देश के हित के लिये क़ानून बना करेंगे। यह सभा लेजिस्लेटिव असेम्बली कहलाती है। यह जो क़ानून बना देगी उसी के मुताबिक काम होगा। तुम लोग किसान हो, तुमसे जो लगान आज वसूल किया जाता है उसे यह सभा चाहे तो बढ़ा दे और चाहे तो घटा दे। यह सभा यदि यह क़ानून बना दे कि जो ज़मीन तुम जोत रहे हो वह तुम्हारी हो जाय तो वह तुम्हारी हो जायगी फिर ज़मीदार उसे नहीं छीन सकेगा।

एक ओर से आवाज़ आई—"तो इस सभा मे बड़े बड़े अँगरेज़ गोरे बैठेगे?"

"ठहरिये मै अभी बताऊंगा। पहिले आपने यह समझ लिया कि यह सभा तुम्हारे लाभ के या हानि के क़ानून बना सकती है। इस सभा पर ही तुम्हारा भविष्य निर्भर करता है। अब सुनो, यह सभा उन लोगो की बनी होगी जिन्हे तुम चुनोगे। तुम्हारे चुने हुए लोग ही उस सभा मे बैठ कर तुम्हारे लिये क़ानून बनायेंगे।

फिर एक आवाज़ ने पूछा—हम कैसे चुनेगे?

दूसरे ने कहा—अच्छा, हम आपको चुनते है।

कुछ ने कहा—ठीक है, ठीक है, आप खूब समझाते हैं। हमने आपको चुना। कुछ लोग कानाफूंसी करने लगे, क्यों भाई, अपने मुखिया को क्यो न चुनें? मै तो अपने भाई को चुन दूंगा। तू अपने काका को चुन दीजो।

वक्ता महोदय ने कहा—शान्त रहो। मै बताता हूँ किसे चुनेंगे और कैसे चुन सकेगे? चुनने के लिये और चुने जाने के लिये एक विशेष योग्यता की आवश्यकता है। आप मे से—

(क) जो संयुक्त प्रान्त मे ऐसे मकान के मालिक हो जिसका वार्षिक किराया २४) रु० या उससे अधिक हो, या

(ख) जो संयुक्त प्रान्त मे ऐसे शहर मे जहां पर म्युनिसिपैलिटी द्वारा हैसियत कर लिया जाता हो, १५०) रु० की वार्षिक आय पर यह कर देते हो, या

(ग) जो भारत सरकार को आय-कर देते हो, या

(घ) जो ऐसी ज़मीन के मालिक हो जिसकी आय निर्धारित रक़म या उससे अधिक हो, या

(च) जिनके अधिकार में निर्धारित आय या उससे अधिक की ज़मीन हो, या

[संयुक्त प्रान्त मे १० रु० या अधिक वार्षिक लगान देने वाले व्यक्ति निर्वाचक हो सकते है।]

(छ) जिनमे शिक्षा सम्बन्धी निर्धारित योग्यता हो, या

(ज) जो भारतीय सेना के पेंशन पाने वाले या नौकरी छोड़ चुकने वाले अफसर या सिपाही हो। वे चुन सकेंगे।

वे अपनी राय उसको देगे जो असेम्बली मे जाने के लिये

खड़ा किया गया होगा। जिनको सबसे अधिक राये मिलेगी वही चुन लिया जायगा। यदि आप चाहते है कि आपके कष्ट दूर हो जायँ तो ऐसे आदमी को अपनी राय दीजिये जो आपके साथ हमदर्दी रखता हो, जो आपका भला चाहता हो, जो वहां जाकर ऐसे क़ानून न बनवाये जिनसे तुम्हारा खून चूसा जाय। वे ज़मीदार जो तुम्हारा रक्त पी पी कर मोटे हुए है, क्या कोई ऐसा क़ानून बनने दे सकते है जिनसे उनकी शिकार उनके पंजे से निकल जाय। जिसने तुम्हारे सुख के लिये अपने सुख की चिन्ता न की हो, जो विद्वान् हो, जो असेम्बली मे अपने भाषणो से प्रभाव पैदा कर सके, जिसको स्वार्थ का भूत सवार न हो, जो इस लिये जा रहा हो कि सचमुच उसे कुछ करना है, जिसने अपनी सेवाओ का प्रोग्राम बना लिया हो ऐसे आदमी को चुनो। इसी मे तुम्हारा कल्याण है। लोभ मे आकर अपनी राय बेचना मत। तुम्हारी राय का मूल्य उस राय के बदले मे मिलने वाले रुपयो से कही अधिक है। यह भी ख़याल रक्खो कि राय खरीदने वाला अपनी कमज़ोरी महसूस करता है। वह समझता है उसमे कुछ असलियत नही, इस लिए उसे कोई पूछेगा नही; इस कमी को पूरा करने को वह रायें ख़रीदता है। तुम्हे बड़े बड़े लालच दिये जायँगे। पर फिसलना मत। यह बहादुरो का काम नही। उठो, प्यारे किसानो, अपनी ताक़त पहचानो। एक होकर अपने वास्तविक हितैषी को राय दो।"

वक्ता ने बोलना बन्द कर दिया। एक दम सन्नाटा था, मानो

भाषण का प्रभाव सब पर छागया हो। उस दिन सबने अपने आप सोचा कि दीनानाथ सा योग्य तथा उनका हित चाहने वाला दूसरा नही, और उन्होने तय किया कि वे उसीको वोट देगे। वातावरण बदल गया था। अपने ज़मीदार के ऊपर उनमे श्रद्धा नही रह गयी थी।

ऐसे ही अवसर पर बौहरे जी मोटर हार्न बजाते गॉव मे आ धमके। लोगों ने आज एक सभा करके सबका अन्तिम निश्चय जान लेने का इरादा किया था। महफिल भी लग गई थी। आज गॉव के ही लोग बोलने वाले थे। एक जोश मे कह रहा था—

"रूस का सा दिन पास आने वाला है। वह हम तुम किसान लोग ही ला सकते हैं। उखाड़ फैंको जमीदारी प्रथा को। हमारे ज़मीदार ने क्या कम ज़ुल्म किये है? हममे से कोई भी उन्हे वोट नहीं देगा।"

बौहरे जी अपनी कचहरी—चौपाल पर पहुॅचे तो उन्हे उस सभा का हाल मालूम हुआ। उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। उनकी रिआया और उसका यह व्यवहार। इन भुनगो को ठीक करना ही होगा। ज़मीदार ने उनके लिये क्या कम उपकार के काम किये है। वे रिआया के पिता की भॉति है। उन्होंने सोचा इन उद्दण्ड लड़कों को विना दण्ड दिये काम नहीं चलेगा। इस वात पर उन्हे दुःख था कि ऐसे कृतघ्न गॉव के साथ आज तक उन्होने कोई भी रिआयत क्यो की? कभी लगान कम किया,

कम व्याज पर रुपया दिया, वसूलयावी मे सख्ती नही की। आज ज़रासा काम आ पड़ा तो उनके ये मिजाज़...... .....

उधर गॉव वालो की सभा मे कोई कहता जारहा था—

" हमने आज तक ज़मीदारो का बहुत आतङ्क सहा है, अपने घर के बच्चो को बिलबिलाता छोड़ जमीदार का भण्डार भरा है। ख़ुद फटे कपड़े पहन; कभी कभी नॅगे रहकर भी उन्हें क़ीमती वस्त्र पहनाए है। आज ज़मीदारो की शान शौक़त किसके कारण है ? हमी से ठग कर, हमी से हमारे रुपयो पर व्याज से एक के तीन करके ये मोटे हुए है, आज तक हमने अपनी आस्तीन मे सॉप पाला है। हमको अब चेतना होगा। और इस ज़मीदार जाति को उसकी कृतघ्नता का फल चखाना होगा। इस जाति ने जिस हॉडी मे खाया है उसी मे छेद किया है "—

और ठीक यही बात सोच सोचकर जमीदार का क्रोध बढ़ रहा था। उन्होने कारिन्दा बुलवाया और कहा—बताओ सभा मे कौन कौन भाग ले रहा है ? कौन कौन हमारे आदमियो को हमारे खिलाफ उभाड़ रहा है ? इसका पता लगाओ।

कारिन्दा चलने को तैयार हुआ तो बौहरे जी ने सोचा कि खुद चलकर ही क्यो न देखूं। पर कही वे लोग क्रोध मे हुए; नहीं, डरना किस बात का। कुछ लठैत साथ मे ले लूँ।—ठहरिये, कारिन्दा साहब ! अपने आठ दस आदमियो को साथ ले लीजिये। मै स्वयं चलकर देखता हूँ।

कारिन्दा ने एक प्यादा भेजकर कुछ आदमी बुलवाये। अपनी लाठी-बन्द फौज को साथ लेकर अब जमीदार साहब चलैगे और किसानो को मजा चखा देंगे कि उन्होने अपनी मनमानी करने का कैसे निश्चय किया! वे स्वतन्त्रता पूर्वक क्यो सोचने लगे! उन्होने कोट पहना, साफा सँभाला कि ठहर गये, और कारिन्दा से कहा—" हमारा जाना क्या ठीक होगा? नहीं, उन बदमाशो को यहीं लाओ। कहना कि ज़मीदार साहब बुला रहे है। जो नहीं आएगा बेदख़ल करा दिया जायगा। उसके साथ कोई रिआयत नहीं की जायगी। "

आदमी दौडाए गये। वहाँ सभा समाप्त हो चुकी थी। जमीदार के आने का समाचार वहाँ पहुँच चुका था पहले ही; और तभी सब लोग दीनानाथ को वोट देने का निश्चय करके अपने अपने खेतो को चले गये थे कि जमीदार का सामना न हो जाय। यह समाचार सुना तो जमीदार का क्षोभ से मुँह पीला पड़ गया। वे झुँझलाये हुए मोटर मे बैठकर चल दिये। आज उन्हे कुछ कुछ मालूम हुआ कि दीनानाथ को जो वे नाचीज समझते थे सो वही नाचीज उन पर पूरी तरह हावी होने जारहा है। पर उन्होंने सोचा कि मेरा क्रोध करना अच्छा नहीं रहा। इन लोगों को रुपये से जीता जाना चाहिये। घर पहुँचते पहुँचते उनका तात्कालिक रोष दूर होगया। उन्होने फौरन ही आज्ञा निकलवा दी कि सरगमा गाँव के किसानो का सारा बक़ाया माफ कर दिया गया।

गाँव वालो को जब यह ख़बर सुनाई गई तो उन्होने कहा

कि यह तो हमारे संगठन की पहली विजय है। भगवान ने कैसी अच्छी भॉति हमारे स्वतन्त्र शुभ निश्चय का मीठा फल हमे दिया है। हम अवश्य दीनानाथ को वोट देंगे। उन्हीं के नाम के प्रताप से तो यह सब कुछ हुआ है। ज़मीदार ने जो ये अर्थ सुना तो उसका दिल बैठा पर हिम्मत न हारी।

(३)

चुनाव का दिन आगया। पौलिंग के पास बड़ी धूमधाम थी। मोटरो पर मोटरे दौड़ रही थी। दोनो दलो के अलग अलग डेरे लगे हुए थे। एक ओर नाच गाना हो रहा था तो दूसरी ओर राजनीति समझाई जा रही थी। पूड़ियो के कढ़ाव चल रहे थे। मिठाइयॉ बॅट रही थी। भूखे भिखारियो की भॉति एजेण्ट राय वालो के सामने रिरियाते फिरते थे। दाव पेच चले जा रहे थे। बड़ी चतुराई भरी ऑखो से यह ताड़ने की कोशिशें हो रही थीं कि कौन किधर जायगा।

एक गॉव का एक मुखिया आया। वह नाम का मुखिया नहीं था सचमुच वहॉ का सरदार था। यह उसी सरगमा गॉव का था। सरगमा गॉव वालो ने आख़िर यह तय किया था कि रुपये पैसे खूब वसूल करो ज़मीदार से, और राय चुपचाप दो दीनानाथ को। गॉव वालो ने अपनी राय का बोझ इन्हीं मुखिया पर डाल दिया था। जिधर ये चलेगे उधर ही सब चलेगे। मुखिया के हाथ मे सौ वोटे थीं। मुखिया का महत्व कितना था ? पौलिग केन्द्र के

पास जैसे ही मुखिया पहुँचा कि जमींदार का गुमाश्ता आ पहुँचा। उधर दीनानाथ का आदमी भी आगया।

गुमाश्ता—आहा मुखिया जी! बौहरे जी का डेरा इधर है। वे आपका बड़ा इन्तज़ार कर रहे हैं। कह रहे थे कि मुखिया जी सा सच्चा आदमी दूसरा नहीं।

दीनानाथ का एजेण्ट— इन क्षणिक खुशामद की बातो में न आजाइयेगा। आज आपकी ख़ातिरदारी आपको पीसने के लिए ही की गई है। आइये दीनानाथ जी के डेरे की ओर आइए!

गुमाश्ता—जा बे, आया है दीनानाथ वाला। मुखिया जी पहले वायदा कर चुके हैं। आइए साहब।

दी० ए०—अजी उधर न जाइयेगा। वह आपकी क़ब्र है। यदि ज़िन्दा रहना चाहते हैं तो इधर आइए, चलिये।

गुमाश्ते को लगा कि मुखिया दीनानाथ की ओर झुक रहा है। उसने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा कि बौहरे के रुपये ऐसे मुफ्त के नहीं कि आसानी से डकार जाओगे। चलो इधर।

दी० ए०—हाथ छोड़ दीजिये। आप किसी के साथ बल प्रयोग नहीं कर सकते। कनवेसिंग कर सकते हैं। इन्हें समझा सकते हैं। जो इनकी स्वतन्त्र राय हो वह करने दीजिये।

मुखिया सङ्कट में था। उस पर खुले आम रुपये लेने का

अभियोग लगा दिया गया था। ऐसी दशा मे भी बौहरे जी की ओर चले जाना अपने हाथो अपना अपमान करना था, अपनी इज्ज़त मे बट्टा लगाना था। उसने झिड़ककर कहा—कैसे रुपये? कब दिये? किसने दिए? डोलता है चपरकनाती!

गुमाश्ता उसका हाथ अपनी ओर खीच रहा था, मुखिया ने एकदम हाथ को ढील दे दी। गुमाश्ता जी भरभरा कर चित गिर पड़े। चारो ओर भीड़ इकट्ठी होगई थी। वह गुमाश्ता जी को इस प्रकार गिरते देख ठहाका मारकर हँस पड़ी। अब गुमाश्ता जी के क्रोध का पारा चढ़ गया।

जब मनुष्य को यह पता चल जाता है कि उसे हिक़ारत की नज़र से देखा जा रहा है, तो वह और लोगो को भूला सा जाता है, उधर दृष्टि नही करता; और क्रोध मे अपने अपमान करने वाले पर टूट पड़ता है। यही अवस्था गुमाश्ता जी की हुई। घुँधिया कर दौड़े मुखिया पर। पहले तो धक्का दिया और फिर हाथ पकड़ उसे पूरे बल से अपनी ओर खीच लेजाने लगे। उधर दीनानाथ के एजेण्ट ने पुलिस बुलाली और पौलिंग अफसर को दूसरी पार्टी की इस प्रकार की ज्यादती की खबर दी। पौलिंग अफसर ठीक उस समय घटनास्थल पर पहुँचे जब गुमाश्ता मुखिया को खीचता हुआ कह रहा था, "देखूँ तू कैसे बौहरे जी को वोट नहीं देता?" पुलिस ने पकड़ कर उसे अलग कर दिया। पौलिंग अफसर ने लानत मलामत की। बौहरे जी को बड़ी लज्जा हुई। दीनानाथ के डेरे मे खुशियाँ मनाई गईं।

× × ×

राये पड़ गईं। इस घटना का प्रभाव यह हुआ कि सभी को ज़मींदार से घृणा हो गई। और ऐसा तख्ता पलटा कि सारी वोटें दीनानाथ को मिलीं। विजय दीनानाथ की हुई। बेचारे बौहरे जी पर नाजायज़ दबाव डालने का मुक़दमा चल गया।

सभी उस दिन यह भली प्रकार समझ गये कि विचारपूर्वक स्वतन्त्र भाव से वास्तविक देश-सेवक और योग्य आदमी को ही राय देना अच्छा है।

३

खण्डहर का उपदेश

"हटो हटो, मैं नहाऊँगा। ठहर री प्रमिला, फिर घड़ा भर लेना, मै नहालूँ"—ऐसा कहता हुआ एक जवान भीड़ चीरकर नल के पास आ खड़ा हुआ।

शहरो मे नलो की एक भारी भीड़ अपने घड़ो तथा कलशों को लिये हुए पानी भरने के लिये नल को घेरे खड़ी रहती है। प्रातः शौच जाकर हाथ भी नल पर धोये जायँगे, कुल्ला-दॉतुन भी वहीं किया जायगा। नहाना भी वहॉ से अच्छा कहॉ हो सकता है? गलियो के नलो पर तो कही कहीं औरते अपने चौके के काले बर्तन मॉजती, दाल-साग धोतीं मिलेगी। एक नल पर इतने

बहुत से काम होते हैं। और सभी को अपना काम करने की जल्दी मची रहती है। धक्का-मुक्की करने को जिसमें ताकत है, जो एक साँस मे सौ गालियाँ सुना सकता है, जिसकी आवाज जितनी ही ऊँची है वह सबको परास्त कर नल की टोंटी पर जा पहुँचता है, और फिर जैसी चैं-चैं मैं-मैं रहती है, जो उछल-कूद और पैतरेबाजी होती है, जो आँखें दिखाई मटकाई जाती हैं, हाथ हिलाये जाते हैं, दाँत दिखाये या चमकाये जाते हैं, वह सब अभूतपूर्व होता है! नल के पास कोई दिन भी शान्ति से चला जाय तो वह दिन ही अशुभ समझा जाना चाहिए। तो वहाँ पहले यह हो ही रहा था कि—

"प्रमिला तू पीछे आई थी, तैंने घड़ा क्यों लगा दिया?"

"अरे, ठाकुर जी की पूजा-वन्दना को देर हो रही है।"

"आई, देर वारी, और किसी के यहाँ ठाकुर जी थोड़े है—चल हट।"

"भर लेने दे भैना।"

"कोई तेरी धौंस में हैं, तेरे बाप का नल है, आई खसम खूसटी, ठाकुर जी की पूजा करेगी, दीदा तो ठहरते नहीं, लपक-झपक इधर-उधर—अरे मानती नहीं, अड़ाये देती है।"

आखिर प्रमिला को जैसे-तैसे पहले भरने की इजाजत मिल गई। वह घड़ा भर ही चुकी थी कि जीवनसिंह जवान-पट्ठा आदमी भीड़ हटाता आया और नहाने की तैयारी करने लगा।

सब पर उसका आतङ्क था। प्रमिला ने अपना घड़ा हटाया और जैसे ही जीवनसिंह ने नल के नीचे को पैर बढ़ाया कि एक लड़की ने कहा, "दादा, देखो ऊपर नल पर जो तख्ती लगी है उस पर क्या लिखा है?" लड़की पढ़ी लिखी थी, उस जवान ने कहा—"तुही सुना न क्या लिखा है?" लड़की ने पढ़ा—

"यह नल पीने के पानी के लिये है। यहाँ नहाना व कपड़े धोना, या मवेशियो को पिलाना अथवा नहाना मना है। जो ऐसा करेंगे उनका चुँगी चालान कर देगी।"

"कर दिया चालान," जीवनसिंह ने दर्प से कहा—"एक दफा नही सौ दफा यहाँ नहाएँगे। जा, तुही बुलाला चुँगी के ताऊ को, चालान कर जाय। जीवनसिंह से किसी की क्या हिम्मत पड़ सकती है। और क्योंरी बजमारो, जब तेरा दादा पाँच मिनट पहले नहा गया था तब क्या यह तख्ती उखड़ गई थी या आँक मिट गये थे या तेरी आँखे फूट गई थी?" प्रमिला घड़ा सँभाल रही थी, उसने धीरे कोमल किन्तु दृढ़ शब्दो मे कहा—लाला, ज़रा छींट न उड़े। घड़ा खराब हो जायगा। थोड़ा ठहर जाओ, मै घड़ा ले जाऊँ।"

जीवनसिंह पर लड़की की बातो से जोश का नशा छा गया था उसकी दृष्टि मे संसार का सब कुछ उस काल तुच्छ हो चुका था। उसने सोचा उसका कलकृर भी कुछ नही कर सकता, पुलिस कुछ नही कर सकती, एक हाथ से सिर फोड़ सकता हूँ।

जोश का नशा अन्धा होता है और बहरा भी। उसे अपने अलावा कुछ दिखाई ही नही पड़ता। प्रमिला और उसका घड़ा उसकी आँखो मे न समा सके। वह अपने सिर को नल की धार के नीचे करके अपने पुष्ट हाथो से फ़ुर-फ़ुर करके जोर से नहाने लगा।

प्रमिला धर्म-भीरु स्त्री थी। वह दूसरो का छुआ न खाती थी, न पीती थी। यदि नहाने धोने के बाद उस पर किसी की छाया भी पड़ जाय तो वह दुबारा नहाती थी फिर यहाँ तो घड़े की बात थी। सभी हिन्दू कहलाने वाले व्यक्ति अपने घड़े को नहाने की बूँदो से बचाते है। सो जीवनसिंह इस बात को जानता न हो ऐसी बात नही थी। कुछ तो दर्प का उभार; कुछ जवानी की सनक और कुछ कलह-तमाशा देखने का कौतूहल, उसने एक हाथ जोर से अपने बालो को फरफराते हुए जो फेरा तो बूँदे ऊँची उचटी और घड़े पर जा पड़ी—वह घड़ा भी किसका ?—प्रमिला का। सब सशङ्कित हो उठे। अब बिना तने न रहेगी! प्रमिला की भौहे तन गई। वही मनकू खड़ा हुआ था, वह भी मनचला युवक था। और, नलो के पास, यह कोई क़ायदा नही कि मनचले युवक और युवतियाँ खड़ी न हो, वह तो सार्वजनिक स्थान है, कम से कम पानी भरने के लिये सभी आ सकते है; अतः जब तक समाज का नैतिक नागरिक भाव ही ऊँचा न हो यह कम सम्भावना है कि मनकू ने जैसी बात कही वह कही न जाय। मनकू ने कह दिया—वाह, क्या हौसला है ! कैसी कमान खिच रही है !

यह घृताहुति थी, जो आग शील और लाज की राख से ढकी हुई थी, वह भड़क उठी। उसने कॉप कर घड़ा पटक दिया। भड़ाक से फूटकर उसका जल उछला और बहुतों के कपड़े भीग गये।

वह खड़ी होकर एक-एक को कोसने लगी। खड़े आदमियो को लुच्चा और लफंगा बताने लगी। अन्य औरतो की सहानुभूति भी प्रमिला की ओर होगई। खासा वाक्-युद्ध छिड़ गया। एक ओर औरतें थी दूसरी ओर जीवनसिह। मनकू तो काण्ड मे भीषणता आते देख खिसक गया। एक औरत झपटी भी उसकी लँगोटी पकड़ खींचने को पर वह झटके से दूर जा रहा। अकेला जीवनसिह भी उनके लिये काफी था। दोनो दलो मे क्रोध का पूरा जोश आगया था। कुछ सहानुभूति दिखाने वाले भी आ गये। और वे जीवनसिह को शान्त करने लगे। पर कड़ी रास कसने से जैसे घोड़ा और तुड़ाता है वैसे ही जीवनसिंह प्रमिला पर चढ़-चढ़ दौड़ने लगा। ऐसा लगने लगा कि वह अब प्रमिला पर हाथ छोड़ने ही वाला है कि प्रमिला का पति वहाँ आ उपस्थित हुआ। वह अपनी पत्नी का क्षोभ समझ गया। और उसे पीछे धकेलता हुआ बोला—आ बेहया, मुझसे बोल, क्या औरतो पर अपनी जवानी का रौब दिखा रहा है। मै देखूँ तेरा हौसला। घोड़े की मानो रास टूट गई। क्रोध मे अन्धा हो गया जीवनसिह, आव गिना न ताव, पास रक्खा हुआ एक कलसा उठाया और चला दिया प्रमिला के पति पर। पर खैर यह हुई कि हाथ ओछा

पड गया और कलसा उसके पञ्जो पर पड़ा। कुछ लोग खीचकर जीवनसिह को एक ओर ले गये, और कुछ प्रमिला के पति को। पर कुछ ऐसी बाते हुई थी जो जीवनसिह को खटक रही थी। उसके नये खून मे उबाल आरहा था। वह इन ढोगी धर्मात्माओ को नेस्त नाबूद कर देगा। कहा तो कहा ही कैसे! एक छींट गिर गई, एक घड़ा फूट गया, तो क्या हुआ? सब नहाते है कुछ भी नही होता। उसी के नहाने मे पाप था। सब उससे जलते है। प्रमिला सबसे ज्यादा जलती है। जलते है तो अब आगे नही जलने दिया जायगा। एक-एक को तोड़ के रख दूंगा। है किस भरोसे मे! मै समझता किसे हूँ। देखूँगा, लाये फौज। जब तक खून न होगा यह तेज और आये दिन की तक़रार दूर न होगी। उसे घसीट कर लोग उसके घर मे बन्द कर आये थे। पर उसे ऐसा लगा कि सब लोग उसे कायर समझ रहे है। उसके सामने प्रमिला के पति का चेहरा आगया, मानो वह बिरा-बिरा कर कह रहा था, बड़े आये हाथ चलाने वाले। मार न डाला, तब देखते जब कुछ कर लेते। दूसरे का कलसा भी तोड़ दिया। उसके कान मे जैसे आवाज़ आई—" कहाँ है जीवन, आवे न, घर मे छिपकर औरतो की भाँति क्या बैठा है?"

जीवनसिंह और न रुक सका, उसने लाठी सँभाली और उठ खड़ा हुआ। दर्वाजे के बाहर लाठी तानकर निकला और आ खड़ा हुआ नल के पास। वहाँ आकर ललकारने लगा।

जीवनसिह के क्रोध को सभी जानते थे। वह शहर भर मे

अपने क्रोधी और उद्दण्ड स्वभाव के लिये मशहूर था। लड़ाई मोल लेने की वैसे ही उसे आदत थी, यहाँ तो उसे लग रहा था कि उसका अपमान किया गया है, उसकी धाक को धक्का पहुँचा है। कलशे की चोट से भी सुजान—प्रमिला का पति--जो बच गया, वह उसके कौशल की असफलता की दुन्दुभी थी, और जब तक क्रूरता पूर्वक वह सुजान का गला न घोट देगा, उसके हाथ पॉव न तोड़ देगा, उसे सान्त्वना कैसे मिलेगी? कैसे मिलेगी? उसकी खोई धाक कैसे लौटेगी? उसका दिल कचोट-कचोट कर रह जाता था। वह उफन-उफन कर अपनी लाठी को आज़माता था। उसका क्रोध यह देखकर और भी भड़क गया कि सब मरे से छिप गये हैं, वह अकेला यहाँ भूँक रहा है। उसने सोचा—अच्छा उसे उल्लू बनाया है! सबके सब छिप गये है, जैसे किसी के जुबान ही नहीं! यह मेरा तमाशा देख रहे है।—ऐसा ख़याल समझदार और शान्त आदमी को भी क्षोभ से पागल बना सकता है, जीवन तो क्रोधी था। उसने कहा—कोई नही बोलेगा तो घरो के किवाड़ तोड़ डालूँगा।

वह आगे बढ़ गया और प्रमिला के किवाड़ो मे कस कस के लाठियॉ चलाने लगा। भीतर सिवाय प्रमिला के कोई न था और वह भयभीत होकर कुररी—क्रन्दन कर रही थी। किवाड़ पर पड़ने वाली प्रत्येक चोट उसे ऐसे लग रही थी कि उसकी हड्डियो को तोड़े दे रही हो।

प्रमिला का पति सुजान समझदार आदमी था। वह ताड़

गया कि जीवनसिह का क्रोध शान्त नही हुआ है। वह उपद्रव अवश्य मचावेगा। एक दो मनुष्यो के सिर फूट जायँगे। तब क्या किया जाय? कुछ लोगो को इकट्ठा कर जीवनसिह को समझाना झगड़े को वढ़ाना होगा। जीवनसिह मे जो अभिमान कूट-कूट कर भरा है उसके कारण क्रोध के समय उसे समझाना आग मे घी डालने के बराबर है। फिर भावी आपत्ति से रक्षा कैसे हो? जीवनसिह को कोई काम भी नही था। यह आशा ही व्यर्थ थी कि वह काम पर चला जायगा और कुछ काल के लिये बला टल जायगी। उसने सोचा—तब क्या किया जाय? ठीक, उसे याद आया कि ऐसे आपत्ति के क्षणो मे रक्षा करने के लिये ही पुलिस बनाई गई है। वह पुलिस मे इस ख़तरे की सूचना दे देगा। यदि पुलिस का एक सिपाही भी गली मे आज कई बार चक्कर लगा आये तो उसके भय से जीवन कोई गड़बड़ न कर पायेगा। उसने यही निश्चय किया, शान्ति-रक्षा का इससे अच्छा उपाय उसे दूसरा न मिला। वह थाने मे पहुँच गया। वहाँ उसने अपनी प्रार्थना लिखा दी।

वस्तुतः पुलिस का काम ही यह है कि वह झगड़ो का शोध स्वयम् रक्खे और जहाँ झगड़ा होते देखे वहाँ अपनी ओर से ही पहुँच कर शान्ति-प्रिय नागरिको की रक्षा करे और उसे अपने शान्तिपूर्ण व्यवसाय को चलाने मे सुविधा दे।

वहाँ के थानेदार भले आदमियो मे से थे। उन पर पुलिस की ख़राबियो का ज्यादा असर न था। वे बी० ए० थे और

अपना कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य समझते थे। वे समझते थे कि पुलिस पर ही नगर के जान माल का दार-मदार है। जिन लोगो मे पशु है उन्हे रोकना वे अपना धर्म समझते थे। जैसे ही सुजान ने अपनी प्रार्थना सुनाई वे तैयार होगये और दो सिपाही घटनास्थल पर भेज दिये।

सुजान गली मे पहुँचा तो दृश्य देखकर धक् रह गया। वह यह कभी सोच न सका था कि जीवन क्रोध मे इतना पागल हो जायगा कि घर की किवाड़े तोड़ने की तैयारी कर देगा। जीवन-सिह लाठी पर लाठी किवाड़ो मे मार रहा था। भीतर प्रमिला के चीख़ने की आवाज़ सुजान के हृदय को चीर कर पार हो रही थी। अपनी स्त्री का आर्तनाद सुनकर भी कौन धैर्य बनाये रख सकता है! उसके सामने से उसका ज्ञान और धैर्य लुप्त होगया। उसने क्रोधपूर्ण शब्दो में कहा—जीवन ! ख़बरदार जो अब लाठी चलाई, ख़ून हो जायगा ख़ून।

जीवनसिह चौका, और उलट कर लाठी सँभालता हुआ बोला—वह तो होगा ही, और उसने लाठी चलाई। उसी क्षण उसे पुलिस के सिपाही दिखाई पड़े। उसे काठ मार गया। हाथ शिथिल होगया और लाठी छूटकर दूर जा पड़ी। सिपाही जीवन को लाठी चलाने के लिये सन्नद्ध देख चुके थे। उन्होने उसे गिरफ्तार कर लिया, किन्तु सुजान यह न चाहता था। वह हर-गिज़ यह बात पसन्द न करता था कि उसकी गली का उसी का एक भाई पुलिस के द्वारा पकड़ कर बे इज्ज़त हो। वह तो केवल

यह चाहता था कि पुलिस का पहरा सा रहने से विपत्ति न आ सकेगी। पर तीर निकल चुका था। परिस्थितियाँ भिन्न हो चुकी थीं। जीवनसिह वह कर चुका था जिसकी वह कल्पना भी न कर सकता था। जीवनसिह को पकड़ा गया देखकर इसकी आँखों से आँसू छलछला पड़े। उसने पुलिस से कहा—दीवान जी, आप पकड़े न। हमारा भाई है। हम आपस मे सुलझ लेगे। दीवान ने कहा—नही, हमने अपनी आँखो देख लिया है। यह व्यक्ति खून करने पर उतारू है, और यदि हम न आये होते, तुम अकेले ही होते तो तुम्हारी खोपड़ी से खून बरसता होता।

जीवन ने सुजान की आँखो मे आँसू देखे तो उसका सिर नीचा होगया। वह यह भली भाँति समझ गया था कि अब छूटना मुश्किल है। गड्ढे मे गिर कर जब होश आता है तभी उसकी गहराई का भय विदित होता है। अब जीवनसिह को ज्ञान हुआ कि गलती मैंने ही की, क्यो तो नहाया और क्यो फिर बूँदे उसके घड़े पर डालीं? वह चुप होगया। पुलिस के आने और जीवनसिह के पकड़े जाने का समाचार सबको मिला। खुशी किसी को न हुई, सबके मन जैसे मर गये। जीवनसिह की स्त्री हेम भी द्वार पर आ खड़ी हुई। अभी अपने पति का आतङ्क देखकर उसकी छाती राजपूतनियो की भाँति गर्व से फूल उठी थी। किन्तु वह यह न समझ पाई थी कि जीवनसिह क्रोध मे इतना पागल हो गया है। पर इससे क्या, क्या सुजान उसे समझा न सकता था? पुलिस को बुलाने की क्या जरूरत थी? उसका सिह जैसे मार डाला गया हो। अपने

पति को अपनी आँखो के सामने बेड़ियो मे जकड़े जाते वह कैसे देख सकती थी ? वह काठ बनकर रह गई। उसका सॅसार उसके सामने से लोप होगया। नीचा सिर किये अपने दरवाज़े के सामने से हाथो मे हथकड़ी पहने सिपाहियो के बीच मे उसने अपने पति को जाते देखा। वह और न सह सकी। एकदम घर की किवाड़े बन्द कर चीख मारती हुई भीतर को दौड़ी। बदहवास, अपने मुँह मे उसने कपड़ा ठूँस लिया और आँगन मे छाती के बल गिर पड़ी।

ओह, मुहल्ले मे उसके पति का अनादर ! उसे अपने मुख पर कालिख पुती हुई प्रतीत हुई। उसे अपने पति पर क्रोध आया। क्यो न उन्होने मुझे बतलाया कि वे लाठी लेकर मारने जा रहे है ! आह, कहीं मै ही समझदार होती, क्यो न उनकी ख़बर रखती, क्यो न उन्हे जाने से रोकती ? उसे ख़याल आया, सारा मुहल्ला उन्हे धिक्कार रहा होगा। प्रमिला तो आज घी के दीपक जलायेगी, घी के दीपक ! उसकी आँखे उद्दीप्त हो उठी। यह सब उसी कलमुँही प्रमिला की करतूत है, उसी ने यह विष-बीज बोया है। क्रोध मे मनुष्य का मन एक दायरे मे चलता है। और हर हालत मे उसका केन्द्र वही "अहं" होता है। हेम प्रमिला के नाम से सिहर उठी—ओह ! यह विचार उसे असह्य था कि वह जब ऐसे रोये, प्रमिला हँसे और घी के दीपक जलाये। हमारे मन का भ्रम कितना भयानक होता है। औरो की अपेक्षा हमारा स्वयम् का भ्रम हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। काश हेम भी यह जानती होती

कि प्रमिला इस काण्ड से प्रसन्न नहीं। उसके घर मे दीपक नही जल रहे, काश कि वह जानती कि जब हेम इस प्रकार दुःख दग्ध छटपटा रही थी और प्रमिला को कोस रही थी, उस समय साध्वी प्रमिला अपने ठाकुर के द्वार पर खड़ी हो आँखो मे आँसू भरे यह विनती कर रही थी—भगवान्! हमसे ग़लती हुई है। हेम की दुःख और पीड़ा मुझे मिले। भगवन् हमारे पापो को क्षमा कर। तू दण्ड देले पर एक स्त्री को मत रुला। हे ठाकुर! ऐसा कर कि हमे सद्बुद्धि आवे।

पर ये बाते हेम तक नही पहुँची, न हेम का निश्चय ही प्रमिला को मालूम हुआ। जिसका आरम्भ ग़लती मे हुआ उसका अन्त सही हो सकता है क्या?

× × ×

वह भयानक रात्रि थी। अट्टालिकाओ के उस दुर्ग मे तारो का क्षीण प्रकाश भी न पहुँच पाता था। उस घटना से क्षुब्ध सभी मन मारे अपने अपने घरो मे सोये हुए भयानक स्वप्नो के ताने-बाने बुन रहे थे। गली से दूर उस अन्धकार मे गडगड़ाती सी कभी कभी दूर के कुत्तो की भूँक सुनाई पड़ जाती थी। चौक के गुम्बज की घड़ी से एक घण्टे की आवाज़ गली तक आते आते विलीन होगई। उस "एक" की गूँज के साथ ही जीवनसिह के घर का एक द्वार खुला और एक छाया सी निकली। वह सुजान के घर की ओर बढ़ती चली गई और थोड़ी देर मे वह भयानक अग्नि मे परिणत होकर हू हू करने लगी।

सुजान के मकान मे आग लग गई थी। किवाड़, चौखट, मेज़, कुर्सी, कपड़े-लत्ते यहाँ तक कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईटे भी जलने लगी हैं। भभक भभक कर आग होली खेल रही थी, निर्दयता और नृशंसता पूर्वक। सब लोग मध्य-रात्रि की नीद ले रहे थे। उनकी इस असावधानी का अग्नि ने लाभ उठाया। वायु भी दुर्भाग्य से तेज़ हो गई और सुजान तथा प्रमिला के मकान से लपटे निकल निकल कर दूसरे मकानो को घेरने लगी। सब घर पास पास थे। हेम का मकान भी पड़ौस मे ही था। हवा के झोको ने आग के स्फुलिंग उसके घर मे भी पहुँचा दिये और वह भी धधकने लगा।

अब एक दम हल्ला मचा। यह नही कहा जा सकता किसने आरम्भ किया, या सभी एक-दम उठ पड़े और चिल्ला उठे। सब ओर से हल्ला हुआ। पुलिस को ख़बर दी गई। चुँगी को सूचना पहुँचाई गई। जिस नल ने मुहल्ले मे यह आग लगाई थी, वह बुझाने के लिये पानी देने लगा। शहर के स्वयं-सेवक तथा बालचर भाग भाग कर वहाँ पहुँचे। पुलिस भी आगई। सामान बचाने का उद्योग भी किया गया। फायर ऐञ्जिन भी आया। बड़ी कठिनाई से घण्टों तक लगातार युद्ध के पश्चात् आग क़ाबू मे आ सकी। हवा का रुख़ प्रमिला के मकान से हेम के मकान की ओर था। प्रमिला का तो सामने का भाग ही जला पर हेम का सारा मकान भस्म होगया। अनेको आदमी अधजले हो गये।

स्काउट उन लोगो को अस्पताल ले गये। ग़नीमत यह हुई कि मरा कोई नही।

हेम दूर खड़े खड़े इस काण्ड को देख रही थी। उसके हृदय मे जो आग धधकी थी वह मकानो मे ऐसी आग की धधक देखते ही स्तब्ध होगई। जिसका आदि जल की बूँदो से हुआ वह आग की भस्म मे समाप्त होगा ऐसी कल्पना भी कोई नही कर सकता था, पर वह तो हो ही गया।

प्रमिला की पुकार उसके ठाकुर ने सुनी या न सुनी किन्तु इस भीषण काण्ड को देखकर सबको सुमति अवश्य आगई। सबने उससे शिक्षा ली।

× × ×

मुहल्ले के अधिकॉश मकान खण्डहर होगये। अनेको मनुष्य दरिद्र होगये। उनका सब कुछ भस्म हो गया। उन खण्डहरो पर एक शिला-लेख लगा आज भी दीखता है। उसमे लिखा है.—

"नागरिक नियमो का ठीक पालन न करने और अपने उत्तरदायित्व तथा कार्यों के फल को न समझने का जो भयानक परिणाम होता है वह ये काले खण्डहर बताते हैं।"

———

४

मृत्यु पर विजय

(१)

और उसने निश्चय कर लिया कि प्राणों का मोह छोड़ देना होगा। जिन प्राणों को स्वतन्त्र साँस लेने का अवकाश नहीं था, जो मातृ-पितृ हीनता के अभिशाप में ग्रस्त अपने चाची-चाचा के लिये जीवन-भार बन रहे थे उन्हें रखकर क्या करे—

यह नहीं कि सुरेश अपढ़ा था, और इस लिये स्थितियों को समझ न पाता हो। यद्यपि वह किसी कालेज में शिक्षा न पा सका था फिर भी उसे पढ़ने में रुचि थी और घर पर ही उद्योग

करके उसने अपना बहुत विस्तृत ज्ञान कर रक्खा था। किन्तु वह उन समझदार लोगो मे से था जो सफलता को महत्व देते है, विफलता की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन स्वीकार करते है। जिनकी दृष्टि मे जीवन भौतिक व्यापार है और उसका इतना ही मूल्य है जितना किसी वृक्ष के उग आने का अथवा फूलो के खिल जाने का, इस लिये यदि मृत्यु बुलाली जाय तो हर्ज क्या ?

वस्तुतः वह स्वर्ग-नरक, लोक-परलोक और इनका भय और प्रलोभन दिखाकर मनुष्य को कार्य मे प्रवृत्त करने वाले धर्म जैसी बातो को भी स्वीकार न करता था। अतः साधारणतः मनुष्य को स्वयं मृत्यु का कवल हो जाने से रोकने वाली जो पाप के भय की प्रेरणा होती है वह उसमे नाम मात्र को न थी; उसका जीवन असफलताओ का ढेर था। माता-पिता का न होना उसके जीवन की सबसे पहली असफलता थी क्योंकि इसने एक तो उसके मन मे एक स्वाभाविक पक्षपात का विष उत्पन्न कर दिया था। दूसरे उन्नति के लिये जिन सुविधाओ की आवश्यकता होती है उनका उसके लिए दुर्भाव उपस्थित कर दिया था। वह धनी माँ-बाप का पुत्र नही था, इसीलिए चाचा-चाची के लिये बोझ था। चाचा-चाची उसके खाने-पिलाने मे जितना व्यय करते थे उससे अधिक वे उसकी सेवाओ से वसूल कर लेते थे। फिर भी उस पर अहसान किया जाता था कि लाला पाल-पोस कर बड़ा किया है, नही कोई बात पूछने वाला न होता। घर मे वह एक कैदी से बदतर था। अपनी अपेक्षा वह उन नौकरो को अच्छा समझता

था जो मालिक से न बनने पर किसी दूसरी जगह जा सकते थे। यहाँ उसे सब कुछ चाचा-चाची की इच्छा से करना होगा। वह एक क़दम बिना उनकी मर्ज़ी के नहीं रख सकता। उसके चौबीसो घण्टो पर चाचाजी का अधिकार था। एक-एक मिनट का हिसाब उसे देना पड़ता था। वह जब कभी अपने नौकर को अपने मन मुताबिक चाहे जहाँ घूमते-फिरते देखता था तो हृदय में एक विद्रोह पैदा हो जाता। बरबस उसके हृदय में यह भाव पैदा हो जाता था कि मुझे घर का जितना काम करना पड़ता है उतना करने के लिये १०) रुपये और खुराक से कम मे कोई आदमी न मिलेगा, और मेरे ऊपर चाचा जी सब मिलाकर ६) रु० ख़र्च कर रहे होंगे, उस पर यह शान! वस्तुतः हमारे घरो का जो मुख्य आधार प्रेम और करुणा है वह आज सर्वथा लोप हो गया है। प्रेम में विनिमय का भाव हो गया है, शोषको का नैतिक आदर्श ग्रह-जीवन में समाता चला जा रहा है। जो बड़ा है, घर का मालिक अथवा मालकिन है, वह अपने छोटो का सब प्रकार शोषण कर अपना सुख बढ़ाने की चिन्ता मे रहते हैं। यह शोषण उस अवस्था मे और बढ़ जाता है जब सुरेश जैसा दीन-हीन प्राणी किसी के पल्ले पड़ जाता है। आह! सुरेश सोचता कि बालक राष्ट्र की सम्पति क्यो न समझा जाय? क्यो न समाज बालको की रक्षा का भार अपने ऊपर ले? क्यो न माता-पिता, चाचा-ताऊ, भाई, गुरु के उनके ऊपर होने वाले अस्वाभाविक अत्याचारो से उनको समाज बचावे। सुरेश सोचता है कि मेरा जैसा जीवन

नष्ट हुआ है वैसा न जाने कितनो का हो रहा है और होगया है। उसे याद आया कि दीनानाथ के जब माता-पिता थे और उसे सब सुविधाऐ थी तो वह कितना तेज़ था, कैसी अच्छी कविताऐ बना लेता था, कैसे अच्छे चित्र बना सकता था ? उसके माता-पिता प्लेग मे मर गये और तबसे वह कैसा श्रीहीन रोटी के टुकड़े टुकड़े के लिये तरस जाने वाला हो गया है ! उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गई है। नहीं, बालको पर राष्ट्र को सबसे पहले ध्यान देना होगा, पर राष्ट्र ध्यान देगा कैसे ? जब तक हम बालक है तब तक कैसी भी शक्ति और योग्यता हममे आ नही पाती कि अपनी बात किसी तक पहुँचा सके और जब बालक नही रहेंगे, तब एक तो हम बालक की व्यथा को भूल जायँगे, उस पर किए गये अत्याचारो को प्रेम का मधुर फल समझेंगे। दूसरे हमारी बातो मे तब उतना जोर भी न रहेगा कि उसे कोई सुने। इन सब बातो ने सुरेश को निराशावादी बना दिया। अब उससे और नही सहा जा सकता—

उसने अपने कमरे में दृष्टि दौड़ाई, एक टूटी-फूटी खाट जो चाचा-चाची के किसी भी काम न आ सकती थी उसमे पड़ी हुई थी, उस पर एक फटी दरी थी। एक थेगरी से भरी ओढ़नी की चद्दर थी। कई जगह अब भी फटी हुई थी, वह उसे मरम्मत कराने को चाची को देने का साहस न कर सका था। पहले कई बार ऐसी अच्छी चद्दर को फाड़ डालने के अपराध मे उस पर फटकार और मार पड़ चुकी थी। उस कमरे मे कुछ कितावें थी

जो उसके मित्रो ने उसे दे रक्खी थी। उसकी ऑखो में जल भर आया। उसने अपने मित्रो को पत्र लिख दिया कि वे अपनी पुस्तके ले जायॅ। अब उसे उनकी आवश्यकता नही रही। वह घर छोड़ने को तैयार हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि इस घर मे उसे प्रेम करने वाला कोई था तो वह यह उसका कमरा ही था। आह, कैसी विषम वेदनाओ से पीड़ित होने पर इस कमरे ने उसे अपनी चार दीवारी के आलिगन मे भरकर संसार के क्रूर अत्याचारो से बचाया है! रात रात भर कैसे ये दीवाले उसकी करुण कथा सुनती रही है! कैसे उसके दुखी आँसुओ को इस भूमि ने चाव से पीलिया है और किसी पर प्रकट तक नही होने दिया है! जब उसे कही भी अपने लिये स्थान रहते नही दीखा है; घर के चौके मे, ऑगन मे जब वह जाते भयभीत रहा है तब कैसे इसने प्रेम से अपने अन्दर बुलाया है! इसके साथ मेरा ममत्व जो जुडा हुआ है। पर उसे ध्यान आया कि यह ममत्व भी तो चाचा जी की कृपा से मिला हुआ है। इसका अन्तिम आधार तो उनकी इच्छा ही है। वे न चाहे तो यह भी उसका कैसे हो सकता है। आह! विरक्ति से उसका रक्त सूख गया। उसका अपना दुनियाँ मे कोई नही। वह नही चाहता था कि इस जड़ के ममत्व मे जो थोड़ा रस है उसे भी वह सुखा डाले किन्तु चाचा की मूर्ति उसकी ऑखो मे छा गई और उसने सब कुछ सुखा दिया। नही मेरा कुछ नही। अधिकार हीन, दीन, सबका गुलाम, अपने लिये भी बोझ! नहीं मै रहूँगा नही, अब और

रहने से लाभ क्या ? उसके रोम रोम मे विरक्ति भर गई, वह घर छोड़ कर यमुना जी की ओर चल दिया। उसके हृदय का सूखा रूखा पन मृत्यु-पिपासा बन यमुना के तरल जल की ओर खींचे लिये जाने लगा।

सन्ध्या हो रही थी। वृक्षो की छायाऐ लम्बी बड़ी होती हुई अपने रूप को अन्धकार मे परिणत किये दे रही थी। सूर्य अस्त हो चुका था, उसकी लालिमा मात्र पश्चिमी क्षितिज को रँगे हुए थी, वह धीरे धीरे क्षीण से क्षीण तर होती जारही थी। सुरेश भी इधर न जाने कितना लम्बा सफर तय कर नैराश्य का अवसाद लिये सुख के सूर्य का अस्त देखता हुआ मृत्यु की बड़ी लम्बी छाया के अन्धकार की ओर डग बढ़ाये चला जा रहा था। किन्तु अब उसे अपने हृदय मे एक अलौकिक परिवर्तन सा दीख रहा था। जिस दुःख से उसने घर छोड़ा था और मृत्यु के आलिंगन का निश्चय किया था, वह दुःख जैसे सिमटकर एक गेंद बन गया था और वह उल्लास से उसमें किक लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था। यह उल्लास उसमे कहां से आया ? आज पहली बार वस्तुतः वह कोई स्वतन्त्र निश्चय कर सका था और उस निश्चय के अनुसार कार्य करने के लिये तत्पर हो चुका था, आज पहले पहल उसे आत्म-निर्भरता का आनन्द मिला था। क्या उसी का यह उल्लास था ? और इसमें कितना सुख है। चारो ओर उसे अपने हृदय के इस परिवर्तन की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पहले कुछ मबल और अब तो बहुत ही प्रबल थी। जैसे कोई कह रहा था—

"स्वतन्त्रता का अनिवचनीय आनन्द स्वतन्त्र रहने वाला ही जान सकता है। जो गुलाम है, जिसका मस्तिष्क और शरीर अप्राकृतिक और अस्वाभाविक बन्धनो से जकड़ा हुआ है, उसका हृदय मर जाता है, उसे वैराग्य और अन्धकार घेर लेता है। उसके जीवन का उल्लास नष्ट हो जाता है, और उसकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। सुरेश भी ठीक ऐसा ही तो सोच रहा था, पर उसने देखा कि यह उसके विचारो की प्रतिध्वनि नही। वह न जाने किस शहर मे रेल से और पैदल मीलो का फासला तय कर यमुना किनारे आ पहुँचा है, और यमुना की रेती मे होने वाली एक विशाल सभा उसके सामने है। उसने जो शब्द सुने है वे एक महोदय के भाषण के हैं। थोड़ी देर वह वही खड़े रहकर वक्ता महोदय की बात सुनेगा, अवश्य सुनेगा! वह घर छोड़ चुका है, चाचा-चाची से नाता तोड़ चुका है फिर उसे भय क्या? मृत्यु कोई चाची की रसोई का भोजन नही कि बॅधे वक्त पर न पहुँचे तो भय हो कि भोजन के स्थान पर फटकार और मार मिलेगी; उस मृत्यु को तो जैसे इस क्षण वैसे ही और दूसरे क्षण भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः सुरेश यह व्याख्यान सुनेगा ही, उधर वक्ता महोदय कह रहे थे—

"किन्तु स्वतन्त्रता का आनन्द उच्छृङ्खलता में नही। स्वतन्त्रता मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य के समझौते पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति केवल अधिकार रखता है और उसके सहजात कर्तव्यो को स्वीकार नही करता वह शोषक बन जाता है,

वही दूसरो को गुलाम बनाता है। उधर जो व्यक्ति अधिकारो की कोई चिन्ता नही करता केवल कर्तव्यो के ढेर को अपने सामने देखता है वह वस्तुतः कर्तव्य और अकर्तव्य समझ ही नही पाता। वह जिसे कर्तव्य कहता है, वह दूसरो का आदेश होता है, और उनको खुशामद उसका कर्तव्य हो जाता है। ऐसा व्यक्ति गुलाम हो जाता है। जिसे कर्तव्य करने है उसके पास अधिकार होने चाहिये। जिसके पास अधिकार हैं उसके कर्तव्य होने आवश्यक है। न केवल अधिकार स्वतन्त्रता है, न कर्तव्य। इन दोनो के समझौते के अलावा जो चीज़ है वह या तो उच्छृङ्खलता है, या गुलामी।

और हम भारतवासियो को जितना गुलामी का विरोध करना है उतना ही उच्छृङ्खलता का। हमे स्वयम् अपने अन्दर अधिकारो और कर्तव्यों का समन्वय करना होगा और दूसरो को भी ज्ञान कराना होगा। उन्हे भी इस मानवीय आवश्यकता को समझाना होगा। आज अनेको संस्थाऐ है—कुछ राजनीतिक, कुछ धार्मिक, कुछ सामाजिक, कुछ शिक्षा-सम्बन्धी, किन्तु अभी हमे अपने अन्दर नागरिक संस्थाओ का अभाव प्रतीत होता है। ऐसी नागरिक संस्थाऐ जो अपने अन्दर ही अपने व्यक्तियो को शान्ति-व्यवस्था के लिये, समाज की वैध प्रतिष्ठा के लिये पारस्परिक अधिकारो और कर्तव्यो का ज्ञान कराये और उन्हे करने या समझने के लिये एक शक्ति उपस्थित करे। हम देखते है हमारे पढे लिखे नवयुवक अपनी शक्तियो का अपव्यय कर रहे हैं। हमारे नगर निवासी नागरिक कर्तव्यो को भूले हुए है; अधि-

कारी वर्ग तो अधिकारी है ही ! तब कल्याण का कोई मार्ग तभी दीख सकता है जब युवक नागरिक संस्थाये बनाये। संसार के सारे संघर्ष आज संस्थाओ मे विभाजित होकर ही चल रहे है। युवको को उचित है वे इस अवसर पर आगे आवे और नागरिक संस्थाये बनाये। सरकार हमारे सब काम नही कर सकती। हमारे पारस्परिक व्यवहार का सौन्दर्य वह नहीं बना सकती। बहुत कुछ हमारे अपने लिये छूटा हुआ है। अतः यदि नवयुवक चाहे तो आज से ही उस संस्था का आरम्भ कर दिया जाय।—

भाषण से नवयुवको मे बड़ा जोश आगया था। सच्चाई उनके हृदय मे पैठ रही थी। एक के बाद एक, अनेको युवको ने अपने नाम दिये। इस जोश के वातावरण ने सुरेश के हृदय से मृत्यु का अवसाद दूर कर दिया। आत्म-निर्भरता का उल्लास इन शब्दो से जोश मे परिणत होगया। उसने भी अपना नाम लिखा दिया।

× × ×

शहर मे एक युवक-छावनी बनाई गई; और सुरेश उसका सञ्चालक नियुक्त हुआ।

(२)

सुरेश की तत्परता से नागरिक-मण्डल अत्यन्त शीघ्र ही बलवान हो उठा। युवकों की छावनी में दाखिल होने के लिये रोज़ ही अनेको प्रार्थनापत्र आने लगे। शहर से बाहर एक बड़ी

धर्मशाला छावनी के लिये दे दी गई। धन का भी अभाव न रहा। मजदूरो ने, पास पडौस के किसानो ने यदि थोड़ा थोड़ा दिया तो व्यापारियो ने मन माना दिया। झोली लिये जिधर भी सुरेश निकल जाता था, उधर ही उसकी जेबे भर जाती! सब समझने लगे थे कि दान का यही सदुपयोग है। नागरिक-मण्डल ने युवको की सैनिक-शिक्षा अनिवार्य करदी। युवक-छावनी के सदस्यो के लिए सख्त कार्यक्रम बनाया गया। उसके शरीर की पुष्टि के लिये व्यायाम और उचित भोजन का प्रबन्ध था। मानसिक उन्नति के लिये व्याख्यानो, पुस्तकालयो और वाचनालयो का प्रबन्ध किया गया। इसके साथ ही उन्हे स्वावलम्बी बनने के लिये विविध वस्तुओ का निर्माण करना सिखाया गया। उनके हाथ की बनी वस्तुओ के लिये बाजार मे एक दूकान स्थापित की गई। युवक-छावनी मे अधिकारो को विभिन्न विभागो मे विभाजित करके उनके लिये अलग अलग मन्त्री नियुक्त कर दिये गये। प्रत्येक मन्त्री के आधीन युवक-सेना का एक दल था। युवको के नागरिक आदर्शों का प्रचार करने के लिये "नागरिक" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला गया। वह नागरिक संस्कृति का प्रोपैगेडा करने वाला पत्र था। इस नागरिक संगठन ने समाज के सभी अँगो पर अध्ययन किया, प्रत्येक अँग के अधिकार और कर्तव्य की व्याख्या की। धर्म, अर्थ, समाज, राजनीति सभी क्षेत्रो मे उनका काय होने लगा। युवक दल बलशाली होगया।

उन्होने मद्य-निषेध का प्रोग्राम बनाया और जैसे ही पत्रो मे

उसकी सूचना प्रकाशित हुई लोगो ने अपनी दूकाने बन्द करदी। नागरिको ने समझा कि जितना रुपया हम इस विषय मे डालकर अपने स्वास्थ्य को खराब करते हैं, उतने से हमारे जीवन का रुतबा बढ़ सकता है। हम पतित होने से बच जाते है। लोग कहने लगे कि—भाई, हम तो पहले ही कब अच्छा समझते थे, पर आदत से मजबूर थे। हुड़क अब भी आती है, पर अब युवक-सेना से कैसे पार पड़ेगी। युवको की पहुँच घर घर मे थी। माताऐ-बहिने इन देश के सैनिको की पीठ ठोकती थीं। बहिनो के प्रोत्साहन मे बिजली होती है। युवक अपने पवित्र कर्तव्य के लिये कमर बाँधकर अड़ जाते। यदि किसी को भी गलत रास्ते जाते देखते तुरन्त उसके सुधार का परामर्श करते।

शिक्षा-प्रसार का प्रश्न हाथ मे लिया तो सारा नगर कुछ काल मे ही सुशिक्षित कर दिया। इस प्रकार जिन समस्याओ को भी हाथ मे उठाया सफलता पाई। यह दीख रहा था कि नागरिक भाव फैल रहे हैं। सब एक दूसरे का आदर करना सीख रहे है। सब अपने अधिकारो और कर्तव्यो को समझने लगे हैं।

सब ओर ऐसा ही सुख-सौरभ बरस रहा था कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के चुनाव की चर्चा आरम्भ हुई। और उसके साथ ही हिन्दू मुसलमानो का सवाल उठ खड़ा हुआ। सुरेश ने "नागरिक" पत्र मे स्थिति को ठीक बनाने के लिये एक लेख लिखा—

१९३५ ई० के गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट मे चुनावो का विधान करते हुए हिन्दू और मुसलमानो का प्रथक और साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन करना निश्चित किया गया है। यह भारतीय राष्ट्र को नष्ट-भ्रष्ट करने का कुशल प्रयत्न है। इससे चुनावो की लड़ाइयाँ सिद्धान्तो की लड़ाई न रहकर सम्प्रदायो की लड़ाई रह जायगी, और हिन्दू हिन्दुओ के अर्थ मे, मुसलमान मुसलमानो के अर्थ मे चुनाव मे लड़ेगे। भारतीय के अर्थ मे चुनाव न लड़ा जायगा। फल इसका गहरा होगा। हिन्दू अपनी जगहो की रक्षा के लिये हिन्दुत्व की रक्षा का प्रश्न बनाये रखेंगे। मुसलमान मुसलमानियत का। इससे दोनो जातियो मे मेल का कभी प्रश्न उपस्थित न हो सकेगा। ये दो जातियाँ लड़ लड़ कर नागरिक शान्ति मे विघ्न डाला करेगी। राजनैतिक उन्नति असंभव हो जायगी। घर मे ही दो युद्ध-सन्नद्ध दलो के कारण नैतिक, मानसिक अथवा वैज्ञानिक उत्कर्ष के लिये अवकाश न रहेगा। परस्पर विश्वास उठ जायगा। जो पड़ौसी और भाई है वही साम्प्रदायिक प्रश्न पर शत्रु और प्राणघातक बन जायँगे। पड़ौसी धर्म का पालन करना कठिन होगा कोई भी नागरिक अधिकार सुरक्षित नही रह सकेगा। बाहरी शक्ति की अपेक्षा करनी होगी, और इसका परिणाम होगा अनन्त गुलामी। हमको इसलिये उचित है कि हम इसके खतरे से बचने का उपाय ढूँढे। एक बडी अच्छी विधि यह हो सकती है कि नगर के सभी मुसलमानो और हिन्दुओ की एक सार्वजनिक सभा हो, उस सभा द्वारा अपने यहां

से चुनाव मे जाने वाले गिनती के मुसलमानो और हिन्दुओ का नाम तय कर दिया जाय। सब लोग सम्मिलित वोट दे। जिन मुसलमानो व हिन्दुओ का नाम आवे वही चुनाव के लिये अपना नाम दे। फिर उन्हे एक्ट के अनुसार चुन लिया जाय। या सरकारी चुनाव से पहले नागरिक लोग सम्मिलित निजी चुनाव पहले कर डाले और जिनको बहुमत प्राप्त हो वही चुनाव मे खड़े हो। इस प्रकार उस एक्ट का दोष दूर हो जायगा और काग़ज़ पर प्रथक निर्वाचन का विधान होते हुए भी आत्मा सम्मिलित चुनाव की हो जायगी। फल यह होगा कि हिन्दू मुसलमानो का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ होता रहेगा—

इन पंक्तियो को पढ़ते ही एक अद्भुत सी लहर पैदा हो गई। सभी समझदारो को यह बात पसन्द आई। किन्तु मौलवी फकीरुद्दीन को यह बात नहीं रुची। वे नागरिक-मण्डल और युवक-छावनी के कार्यों को भी सशङ्कित दृष्टि से देखा करते थे। वे एक थे। उन्हे अपने विचारो के समर्थक कम लोग मिलते थे। वे चाहते थे कि इस बार चुनाव मे मै चुना जाऊॅ। पर मै चुना कैसे जाऊॅ ? हिन्दुओ मे मुझे कोई जानता नहीं, उन क़ाफिरो से मुझे घृणा है। मुसलमानो मे मुझे जानते है, किन्तु मियाँ मुहम्मद नवी को मुसलमान और हिन्दू दोनो ही जानते हैं। इन नवी साहब को क़ुरान पर मुतलक़ यक़ीन नहीं। यदि सब मिलकर राय देगें तो नवी साहब हो जायँगे। मै न हो सकूँगा। तव कैसे हो—और उन्होने विधियॉ सोचना आरम्भ कर दिया।

एक दिन उन्होने मुसलमानो को एक बड़ी दावत दी। उसमे बाहर के एक मौलाना फतह मुहम्मद बुलाये गये। मौलाना फतह मुहम्मद ने व्याख्यान मे बतलाया कि हिन्दुओ की तादाद ज्यादा है और वे इस कोशिश मे है कि मुसलमानी सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करदे। हिन्दुओ के सब काम नफरत से भरे हुए है। वे आपके हाथ का छुआ पानी नही पीयेंगे, पान नही खायेंगे। आपकी छाया को भी नापाक़ समझेंगे। यह नागरिक-मण्डल है। वह भी कितना बड़ा हिन्दुओ का प्रोपैगेण्डा है। आप लोग भोले भाले है। ये कॉइयॉ हिन्दू तुम्हे मूर्ख बना रहे है। उनका बहुमत मुसलमानो मे से उसी आदमी को मिलेगा जो उनका भला करेगा। जो उनका भला न करेगा उसे वे राय क्यो देगे? और उनके भले का अर्थ है मुसलमानो की हानि। ऐ मेरे भोले भाले दोस्तो, इस ठगौरी मे मत आओ। क़ाफिरो का कभी विश्वास मत करो। यह देखो, सभा का नाम रक्खा है "नागरिक-मण्डल", मै पूछता हूँ इसमे आपकी उर्दू की कितनी कद्र है। आपकी जुबान के कौन से शब्द है। आपकी जुबान को मिटाकर ये लोग हिन्दी को तुम पर लादना चाहते है। कुफ्र है, जो भाषा बुतो अवतारो के नापाक नामो से भरी हो उसका बोलना भी पाप! भोले भाइयो, धोखे मे मत आना—

फतह मुहम्मद साहब चले गये, पर विष का बीज छोड गये। विष धीरे धीरे फैलता है। वह फैला। कुछ मुसलमानो पर फतह मुहम्मद का प्रभाव पड़ा। वे नागरिक-मण्डल को शक की दृष्टि

से देखने लगे। उसमे हिन्दुओ का रँग देखने लगे। तरह तरह की अफवाहे फैलने लगी—

सुरेश यह चाहता है कि ऐसे मुसलमान को राय दी जाय जो मन्दिर को कुछ दान दे। नहीं, हिन्दुओ ने सोच रखा है कि मुसलमानो को धीरे धीरे हिन्दी पढ़ाकर रामायण पढ़ने को दी जाय। हिन्दू चाहते हैं कि मुसलमान गाय की क़ुर्बानी नही कर सके, और जो मुसलमान उनकी इस बात को मानेगे उन्हे ही वोट देगे।

मनमुटाव बढ़ता गया। मुसलमानो को हिन्दुओ की बातें बुरी लगने लगी। वे उन्हे शत्रु समझने लगे। परस्पर अविश्वास बढ़ने लगा। नागरिक-मण्डल को पक्षपात की आधार-शिला पर खड़ा देखा जाने लगा। सुरेश से यह सब कुछ छिपा नही था। युवक-छावनी मे भी यह सवाल पैदा हो गया था, और मुसलमान धीरे धीरे कम होने लगे थे। इस वर्ष एक बड़ी कठिनाई यह आ पड़ी थी कि होली और मुहर्रम एक साथ आ पड़े थे।

एक दिन एक बारात निकली। नमाज का वक्त था, बरात बाजा बजाते बजाते मसजिद के सामने से निकली। मुसलमानो ने कहा—वे नमाज़ पढ़ रहे हैं बाजा बन्द करदो। लोगो ने कहा—भाई इसमे क्या हर्ज है। नमाज तुम इतनी बड़ी मस्जिद मे पढ़ रहे हो। तुम नमाज़ पढ़ो, हम बरात निकाल ले जायँगे। किन्तु मुसलमान न माने! न माने! बाजा तो बन्द कर दिया गया

किन्तु गाँठ गहरी बैठ गई। यह इसी साल नई बात क्यो? मौलवी फकीरुद्दीन साहब ने कहा—देखा, हिन्दू तुम्हारे साथ क्या करने को तैयार है? वे तुम्हे शान्तिपूर्वक ईश्वर की इबादत तक नही करने देते। इसी के दूसरे दिन सुना गया कि पूर्व के कोने के शिवजी के मन्दिर मे किसी ने गाय काट डाली है। हिन्दू सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होने हल्ला मचाना शुरू किया। यह काम किसी मुसलमान का किया हुआ है। इस घटना ने हिन्दुओ के दिल मे मुसलमानो के प्रति घृणा पैदा करदी। मेल का जो पौधा अभी कच्चा था वह कुम्हिला गया। सुरेश हतबुद्धि था। उसे सब कुछ मिटता सा दीख रहा था। उसके प्रयत्नो का फल उलटा हो रहा था। उसकी बातो का अर्थ कुछ का कुछ लगाया जाता था। वह जिनको मिला कर बैठना चाहता था वही भाग जाते थे।

मुसलमानो के अखाड़े तैयार हो रहे थे। हिन्दुओ मे भी सुस्ती न थी। कोई भी अपने धर्म और संस्कृति को नष्ट नही होने देगा। हर एक का हृदय भावी आशङ्का से भयभीत था। पारस्परिक विश्वास उठ गया था।

आखिर होली आगयी और साथ ही मुहर्रम आगये। और जो इतना स्पष्ट विदित हो रहा था वह हो गया, यानी हिन्दू-मुसलमानो मे लाठी चल गई। एक कोने मे एक साधारण बात पर हाथापाई हुई थी। एक हिन्दू मूँगफलीवाले ने एक मुसलमान

को एक पैसे की मूँगफली दीं और पैसा माँगा। इस पर मियाँजी नाराज़ हुए और एक चपत जमादी।

इस पर कई मुसलमान टूट पड़े। लाठियाँ चल गई। सवाल साम्प्रदायिक हो गया। जो वहाँ मिलता मार डाला जाता। इसी सम्बन्ध मे मुसलमानो की एक बड़ी सभा हुई। उसमे इस बात पर बड़ा क्रोध प्रकट किया गया। कल ताजिये निकलने थे। इस सभा मे एक ख़बर लाई गई कि मुहल्ला चाँदियाने मे हिन्दुओ ने ताजिये को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। उसी के पड़ौस मे कुछ मुसलमानो पर रँग डाल दिया गया है—सभी का पारा चढ़ गया।

इतना हियाव, वह क्रुद्ध भीड़ हुँकार उठी। "अल्लाहो अकबर" की गगन भेदी ध्वनि उठी और वह मुसलमानो का दल का दल मुहल्ला चाँदियाने की ओर चल पड़ा।

सुरेश को खबर लगी कि हज़ारो लाठीबन्द मुसलमान मुहल्ला चाँदियाने की ओर दौड़े जा रहे है। एक दम उसकी आँखो मे रक्तपात का दृश्य घूम गया। ओह! वह यह खून होते कैसे देख सकेगा। कैसे एक भाई को दूसरे का गला काटते देखेगा। युवक-छावनी मे उस समय कोई न था। अकेला सुरेश! पर वह अवश्य वहाँ जायगा। उन्हे समझायगा। वह तुरन्त तैयार होगया और मुहल्ला चाँदियाने की ओर दौड़ पड़ा। छावनी के पास ही था। वह भीड़ से पहले पहुँच गया।

गली के द्वार पर वह खड़ा होगया। उन्मत्त मुसलमानो के

" अल्लाहो अकबर " की ध्वनि आरही थी। इधर मुहल्ले मे भी खबर फैल गई थी। वहाँ भी लाठियो की भीड़ एकत्रित हो रही थी।

सुरेश एक ऊँची जगह पर खड़ा हो गया। मुसलमानो की भीड पास आगई तो उसने कहा—प्यारे भाइयो :—

भीड़ ने कहा—अल्लाहो अकबर !

सुरेश—प्यारे भाइयो, यह गजब न करो।

भीड़ ने कहा—" अल्लाहो अकबर, हम कुछ नही सुनना चाहते "। एक ने कहा—यही काफिर फसाद की जड़ है। मार दो क्या देखते हो ?

दूसरी ओर से आवाज आई—खून हो जायगा। इधर से कहा—इसके लिए तैयार होकर आये है।

सुरेश ने कहा—" प्यारे भाइयो सुनो। तुम आपस मे भाई हो लड़ो मत। एक दूसरे को क्षमा करो, गले मिलो "। पर कौन सुनता। एक ने बढ़कर उसमे हाथ मार ही दिया। वह लडखड़ाया, तब दूसरे ने भी हाथ चला दिया। फिर तो पचासो लाठियाँ चल पड़ी।

मरते मरते सुरेश ने देखा कि वह मरने के लिये ही आया था। पर यमुना मे डूब कर मरने से यह मरना कितना भिन्न है !

उसे लाठियो की चोट फूलो सी लगी। अन्धे साम्प्रदायिको ने निष्ठुर प्रहारो से एक सद् आत्मा का हनन कर दिया।

अब तो हिन्दुओ की हुँकार बढ़ी। इधर युवक-छावनी के सैनिको ने जो सुरेश का समाचार सुना तो दौड़कर घटना-स्थल पर आगये। पुलिस और फौज का भी प्रबन्ध होगया। दंगा आगे न बढ़ सका। सुरेश की आहुति ने साम्प्रदायिकता को बुझा दिया। अब तो उसके उपकार याद किये जाने लगे। जब ख़ून का नशा उतर गया तो लोगो को ख़याल आया कि उन्होने कितनी भारी भूल कर डाली है। वे समझ गये कि उन्होने नागरिको की भाँति कार्य नही किया।

सब फूट फूट कर रोने लगे। सुरेश की स्मृति रक्षार्थ एक सभा हुई। उसमे हिन्दू-मुसलमान गले मिले और परस्पर यह प्रतिज्ञा की कि एक दूसरे का आदर करते हुए मेल से रहेगे।

बाज़ार के चौक मे सुरेश की मूर्ति खड़ी की गई उसके नीचे लिखा था—

"नागरिकता का सच्चा पुजारी

सुरेश

सब को धार्मिक स्वतन्त्रता है। पर पड़ौसी धर्म निबाहना आवश्यक है। हिन्दू-मुसलमान दोनो भारतीय है। उन्हे मिलकर रहना चाहिये। परस्पर आदर और विश्वास रक्खो।"

———

५

देय का दान

(१)

आज कालेज में वार्षिकोत्सव की धूम है। सजावट से वह जगमगा रहा है। अतिथियों के बैठने का अलग, विद्यार्थियों के बैठने का अलग और पुरस्कार-विजेताओं का अलग स्थान है। सभापति का आसन एक ऊँचे मञ्च पर है। उन्हीं के पास पुरस्कार-विजेता बैठे हैं। पुरस्कार-विजेता १०—१५ से ज्यादा नहीं। और उनमें सबसे शुरू में बैठा है धीरेन्द्र! वह बड़ा खुश है। सबसे अधिक पुरस्कार उसे ही मिलेंगे। वह कालेज भर में सर्वश्रेष्ठ ठहराया गया है। उसे कई पुरस्कार मिलेंगे।

× × ×

पुरस्कार-वितरण होगया। उसे बहुत सी चीज़ो के साथ आठ पुस्तकें भी मिलीं। उसे सात पुस्तको की बनावट, जिल्द, विषय सभी बहुत पसन्द आये। पसन्द नही आई उसे एक पुस्तक जिसका नाम था "नागरिक-शास्त्र"। वह सोचने लगा यह भी कोई विषय है? फिर इसकी शक़ल-सूरत कैसी भद्दी है। प्रकाशक यदि कॅजूसी न करता तो पुस्तक कम से कम कमरा सजाने के काम तो आती। न जाने क्या सोचकर यह पुस्तक इनाम दी गई है। कही रद्दी मे पड़ी मिल गई होगी। उसका मन किया कि उठाकर इसे सभापति जी को लौटा दे और कहदे इससे तो मै कम क़ीमत का ही पुरस्कार लेना पसन्द करूंगा। इस समय सभापति सभा की कार्यवाही समाप्त कर रहे थे। उनका भाषण चल रहा था। अब तक का कुछ भी हिस्सा वह न सुन सका था, अनायास ही उसे सुन पड़ा।—

युवको को अब कर्म-क्षेत्र मे उतरना चाहिए। नागरिक बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। नागरिकता का अर्थ किसी नगर अथवा गाँव का सुसंयम है। विद्यार्थी को जिस तरह डिसीप्लिन (Discipline) की अपने लिये अत्यन्त आवश्यकता है, वैसे ही समाज को भी डिसीप्लिन जरूरी है और यही जन-समूह का डिसीप्लिन-सॅयम अथवा निग्रह नागरिकता है। बिना नागरिक शास्त्र का ज्ञान हुए आज का व्यक्ति अपूर्ण है; वह अपने कर्तव्यो का समुचित पालन नही कर सकता। मैं युवको को प्रेरित करना चाहता हूँ कि वे अच्छे नागरिक बने। अपने पड़ौसी भाइयो मे

जाति पाँति का भेद मिटाकर अधिक से अधिक उपयोगी हो सके।—भाषण समाप्त होगया। नागरिक-शास्त्र को फेक देने का विचार विलीन होगया। बड़े चाव से उसने पहले पहल उसी पुस्तक को पढ़ा—

उसने यह जाना कि किस प्रकार समाज का निर्माण होता है, उसमे मनुष्य के व्यक्तित्व का क्या स्थान है? कैसे राजाओ और राज्यो का विकास हुआ? राज्य के दो भेद व्यवस्थापक और कार्यकारक कैसे हो जाते है? भारत का शासन-प्रवन्ध कैसा है? जिलाधीश, तहसीलदार आदि का क्या काम है? क़ानून क्या होता है? प्रजा का क्या कर्तव्य है? चुंगी और जिला बोर्ड क्या होते है?—इन सभी संस्थाओ के अध्ययन मे उसका मन लग गया। पढ़ते पढ़ते एक स्थान पर कुछ पंक्तियो पर उसका ध्यान जमा रह गया।

उन पंक्तियो मे लिखा था:—

"क़ानून पालन करना तो प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है ही, इसके अतिरिक्त यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि नागरिक होने के लिये ऐसे बहुत से काम भी स्वयं करने होते है जिनका क़ानून नही बना होता। किन्तु जिनके बिना नागरिको का सुख नहीं रह पाता। उदाहरण के लिये ऐसी मामूली और निर्दोष घटनाऐ ली जा सकती है जैसे कि, मनुष्य के पास जब किसी दूसरे की वस्तु आजाती है तो वह उसे पचा जाना चाहता है।

उसका मालिक उस वस्तु को भूल जाता है, माँगता नहीं, और यह बिना माँगे देता नहीं।

कुछ काल मे बात गई आई हो जाती है। अब ऐसा व्यवहार अनागरिक है। यद्यपि इसके लिये कोई क़ानून नहीं।

इस प्रकार किसी वस्तु को दाब कर बैठ जाने वाले को कोई सजा नहीं; कोई भय नहीं। और, सच्चे नागरिक की यही पहचान होती है। वह ऐसी किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्वयं ही नहीं रहने देना चाहता, जिस पर उचित रूप से वह अधिकारी नहीं।"

धीरेन्द्र ने पुस्तक मे बुकमार्क लगा दिया। उसका पढ़ना रुक गया, क्योकि उनके विचार पुस्तक से भी आगे बढ़ने लगे थे। उसने सोचा यह बात कही तो थोड़े शब्दो मे गई है पर है कितनी आवश्यक। इस पर हमारी शान्ति और सुव्यवस्था कितनी निर्भर करती है। हमारे विश्वास की यही भित्ति है। मैगस्थिनीज़ ने लिखा था कि भारत मे चोरियाँ नहीं होती, लोग झूठ नहीं बोलते, जो चीज़ जहाँ गिर पड़ती है वहीं पड़ी रहती है और लौटने पर ज्यो की त्यो मिल जाती है। किवाड़े बन्द नहीं की जाती है—और ऐसा असम्भव नहीं। जब तक हम जिन्दगी मे भय से काम करना पसन्द करते है तब तक हम उतना ही करना चाहते है या उतना ही नहीं करना चाहते जितना भय है अथवा भय नहीं है। भय से काम करना निश्चय ही गुलामी मनोवृत्ति

है। हमारे नागरिक-जीवन को स्वस्थ बनाने के लिये इस बात की बहुत आवश्यकता है कि हम वहाँ भी दूसरो के अधिकारो की रक्षा करे जहां क़ानून उनकी रक्षा करने के लिए नही है या जहाँ क़ानून की शरण जाने वाला ही नही है। जो मनुष्य अपना अधिकार भूला हुआ है उसका केवल इस लिए कि वह उसे भूला हुआ है उस वस्तु पर से अधिकार न हट जाना चाहिये। यह प्रश्न बहुत स्पष्ट हल के साथ उसके हृदय मे समा गया। वह सोचने लगा उसके जीवन मे कितना अनियमित अधिकार रहा है! कितनो की भूल की कमजोरी का उसने लाभ उठाया है? उसकी पुस्तको की अलमारी उसके सामने आगई। बड़े चाव से प्रसन्न होकर उसने देखा पहली पुस्तक थी 'होली बाइबिल'। यह पारसाल क्रिश्चियन सोसायटी से मुफ्त मिली थी। इसकी जेकब वाली कहानी ˙, पर नहीं। यह दूसरी पुस्तक है Inidia's Past। ओह, यह पुस्तक उसके मित्र रामपाद गौड की भेट दी हुई है, उसने पुस्तक निकाली। इसके पहले पृष्ठ पर आज भी सुगठित अक्षरो मे उसके मित्र की लेखनी ने उसका नाम और भेट लिखकर उनके सम्बन्धो को अमर कर दिया है। यह पुस्तक जैसे भारतीय यश गाथा का पोथा है वैसे ही ये अक्षर हमारी मैत्री के अटल स्मारक है और यह आगे की पुस्तक The Decline of The West कितनी विद्वत्ता और पाण्डित्य से पूर्ण है यह पुस्तक! एक मनुष्य इतना ज्ञान विस्तृत कर सकता है? इतिहास की समस्याओ का कैसा विश्लेषण है और आदि काल से यूरुपीय

महायुद्ध तक की स्थिति का कैसा विशद वर्णन है। मेरा कितना ज्ञान इसने बढ़ाया। मुझे पुस्तक का कितना कृतज्ञ होना चाहिए और उसका भी तो जिससे यह पुस्तक मिली······

उसका हृदय कुम्हिला गया—किसने दी यह पुस्तक? मैं उसका कितना कृतज्ञ हो रहा हूँ,वाह क्या वरदान है? वह लज्जित हो उठा। झिझक कर कमरे मे चारो ओर देखा कही कोई है तो नही। परन्तु उसका अन्तरंग उसे देख रहा था। उसका न्यायकर्त्ता उसके हृदय मे ही था। "नागरिक-शास्त्र" की वह पंक्ति उसके हृदय मे चमक गई।

"वह ऐसी किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्वयं ही नही रहने देना चाहता जिस पर उचित रूप से वह अधिकारी नही"—और निश्चय ही इस सुन्दर और क़ीमती पुस्तक पर वह उचित रूप से अधिकारी नही। उसने दाम देकर इसे क्रय नही किया, उसे किसी ने पुरस्कार अथवा भेट मे नही दी, वह तो अपने हितैषी प्रिसीपल महोदय से कुछ दिनो के लिये माँग कर लाया था। फिर लौटायी आज तक नही। उन्होने माँगी नही, क्योकि उन्हे याद नही रही होगी, और उसने लौटाई नही, क्यो कि मनमे लालच आगया। वह अपने को धिक्कारने लगा। नही, और आगे वह यह नागरिक अपराध न करेगा। कौन कह सकता है मेरे इस कृत्य ने अविश्वास पैदा कर कितने व्यक्तियो को प्रिन्सीपल साहब के पुस्तकालय के उपयोग से वंचित रक्खा

होगा ? यह उनकी उदारता और कृपा का दुरुपयोग है, अपने नागरिको के साथ विश्वासघात है। उन सबको एक हानि पहुँचाने का उद्योग है। वह कहने लगा कि उसकी मति अब तक ऐसी बिगड़ी क्यो रही ? मै धर्म नहीं मानता, ईश्वर नही मानता पर क्या यह भी नही मानता कि पारस्परिक व्यवहार शुद्ध रहने चाहिए इसलिए कि सामाजिक व्यवहार मे अविश्वास और अशान्ति न उत्पन्न हो—नही, वह अपनी ग़लती को इसी क्षण दुरुस्त करेगा। वह एक पत्र लिखने को तैयार हुआ कि एक नौकर ने आकर कहा—

"बाबूजी, ताँगा तैयार है,और गाड़ी का भी वक्त होगया है ?"

धीरेन्द्र ने सिर ऊपर उठा कर पूछा—और कौन लोग बोर्डिंग मे रह गये हैं ?

नौकर ने कहा—कोई भी नही रहा। सब तो सालाना जलसा होते ही रात को चले गये। केवल आप ही रह गये है।

धीरेन्द्र—तुम्हे पता है, अभी प्रिन्सीपल साहब है ?

नौकर—हमें खूब पता है, वे है। अभी तो उनका चपरासी हमसे बोर्डिंग के बाग के फूल माँग ले गया है।

धीरेन्द्र—तो मिट्ठू एक काम करोगे ?

नौकर—सरकार !

धीरेन्द्र पत्र समाप्त कर चुका था। वह लिफाफे मे रक्खा और उसे नौकर को दिया और कहा—इसे तथा इस पुस्तक को प्रिंसिपल साहब के पास पहुँचा देना, आज ही। मै घर जाता हूँ।

धीरेन्द्र ताँगे मे बैठा और स्टेशन को चल दिया।

× × ×

(२)

धीरेन्द्र इस बार बिल्कुल नये भावो को लेकर अपने गाँव को लौटा। वह अपने गाँव को अब पिछड़ी दशा मे नहीं देखना चाहता। वह जितने दिन भी यहाँ रहेगा गाँव के सुधार का प्रयत्न करेगा। उस पर सुधार का उन्माद सवार था। वह निश्चय का का आदमी था। वह इसे भली प्रकार समझता था कि निश्चय हीन युवक यौवन का कलङ्क है, पर निश्चय पवित्र और परिश्रम का होना चाहिये। वह ग्राम-सेवा का निश्चय कर चुका था। यह उसका एक उन्माद था। जहाँ तहाँ युवको से मिलना, मिलकर गाँव की हालत पर विचार करना। बड़े बूढ़ो से परामर्श करना। उन्हे नई बातो के लिये राज़ी करना। वह पद पद पर देख रहा था कि काम आसान नही। जितनी तीव्र गति से वह चलने की सोचकर आया था उतनी गति से काम होता न दीखता था। पर वह शिथिल होने वाला न था। उसने पहले तो गाँव के व्यवसायो का लेखा-जोखा बनाया, आबादी की गणना, की समय के उपयोग की पड़ताल की और उसने देखा कि गाँव का आदमी बहुत

काहिल होगया है। बँधे रस्ते धीरे धीरे बँधी चाल से चलना ही उसे रुचता है। चौपालो और अगिहानो पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ाते रमठल्ले मारना ही उसे पसन्द है। प्रकृति के भरोसे रहकर वह भाग्यवादी बन गया है और खाने-पीने के सरञ्जाम के मामूली साधन के अलावा अन्य किसी उन्नति का विचार भी उसके हृदय मे नही रह गया। धीरेन्द्र ने अपनी जॉच से जो देखा उससे वह स्तम्भित हो गया। ओह! इतना गहरा अन्धकार!

उसका उत्साह आग की भॉति फूट पड़ा। भाग दौड़ करके उसने एक ग्राम-सभा स्थापित की। उसके लिये ५०—६० रुपये आरम्भिक चन्दा भी एकत्रित होगया। सभा का मन्त्री धीरेन्द्र ही था। इतना रुपया पा लेने के बाद वह कल से कुछ स्कीमो को पूरा करने मे हाथ लगाने वाला था। उसकी पहली स्कीम सफ़ाई की थी—

पहले उन्माद की एक लहर का आनन्द उसे विभोर कर गया।

धीरेन्द्र का दूसरा उन्माद था उसकी शीलवती सुन्दरी स्त्री। वह इतनी पढ़ी लिखी तो न थी, पर गुणवती बहुत थी। सुन्दरी भी अनुपम थी। बाहर जाने पर ग्राम-सुधार का उन्माद था और भीतर आने पर अपनी प्रिय पत्नी के कोमल पवित्र प्रेम का। और कौन कह सकता है कि दूसरे उन्माद का नशा भरघूँट पीने के लिये ही पहला उन्माद विशेष तीव्र न बना हुआ था। नही तो वह अपनी सुन्दरी को कैसे अपनी असफलताओ को सुनाकर सम्वेदना से साश्रु मुख-मण्डल के सौंदर्य को निरखता और

सफलताओ पर प्रशंसा और गर्व से उठे उत्साह से खिले मधुर स्निग्ध रूप को देख अपने परिश्रम को भूल जाता।

आज उसे बाहर अभूत-पूर्व सफलता मिली थी। सारा गाँव उसका लोहा मान गया था। सभा का सॅगठन हो चुका था और आज ही साठ रुपये भी एक-दम जमा हो गये थे। उसके रास्ते की सारी अड़चने चकनाचूर हो चुकी थी। आज गर्वोन्नत मुख से अपनी विजय् अपनी हास्योज्ज्वल मुद्रा से घोषित करता वह घर मे घुसेगा आज सुन्दरी उसके इस गर्व से फूलकर, एक हलकी मनोहर मुस्कान से ओठो को रँगती हुई आँखो मे प्रेम का रस उँड़ेल कर उसकी ओर देखेगी, बस उसके डग सीधे नहीं पड़ रहे थे। उसे संयत होने की आवश्यकता ही क्या? यहाँ तो सब अपने, सब कुछ अपना है। यहीं तो वह स्वतन्त्र उन्मुक्त है, वह इस अन्तर उन्माद मे खिचा अपने कमरे को ओर बढ़ा किन्तु अपने कमरे मे पहला पद रखते ही उसे विदित हुआ कि दिन रहते ही सन्ध्या आगई है। उसकी स्त्री उसका स्वागत करने को उठी, उसके मुख पर एक विवश मुस्कराहट भी थी और इसी मिसली मुस्कराहट ने धीरेन्द्र के हृदय पर चोट कर यह बतला दिया कि उसकी प्रिय के हृदय मे विषाद का धुँआ घुट रहा है या वह अस्वस्थ है। उसका विजयोल्लास चकनाचूर हो गया। उसका उन्माद राख का ढेर बन गया। एक दम श्मशान शान्ति की विरक्ति उसमे उठी, उसने सोचा यह क्या? वह सौन्दर्य क्या हुआ? उसने विनीत और आग्रहपूर्ण शब्दो मे बात पूछी। उसे

पता लगा कि आज उसकी माँ और बहिनो ने उसकी स्त्री को सुना सुना कर उसकी यानी धीरेन्द्र की बहुत बुराई की है। बात इस प्रकार खड़ी हो गई थी कि आज ये लोग पड़ौस मे गीतो मे जाना चाहते थे। सब तैयार होगये। माँ भी, बहिने भी। सभी पर अच्छे कपड़े और गहने थे। जब सुन्दरी आई तो उसके शरीर पर एक चॉदी या सोने का टुकड़ा न था। सब कुछ धीरेन्द्र की पढ़ाई पर न्यौछावर कर दिया गया था। यो नंगे शरीर उसे मॉ बहिने अपने साथ ले जाकर अपनी बदनामी कैसे करातीं और बिना साथ लिये जाने मे भी बदनामी थी। मॉ को भी क्रोध आगया और बहिनो को भी। धीरेन्द्र को सैकड़ो बाते सुनाई। आह! उनका वर्णन भी सुन्दरी कैसे कर सकती है? अपने पति की निन्दा सुनकर भी वह जीती है। उसे सचमुच आत्म ग्लानि हो रही थी, वह धीरेन्द्र के कन्धे पर अपना सिर रख कर अपनी पीड़ा से फुफक फुफक कर रो उठी। तब धीरेन्द्र ने समझा उसकी सबसे बड़ी हार हुई है। पर क्योकर? उसने यहाँ आकर जमीदार के लड़को की ट्यूशन करली है, उससे दस दिन बाद उसे तीस रुपये मिलेगे। यो उसने एक आध छोटा कारबार भी चलाया है, पर उसमे दो चार आने ही बचते है। वह क्या करे? दस दिन बाद तीस रुपये मिल जायॅगे, तभी सबसे पहले वह अपनी स्त्री को कुछ आवश्यक गहने बनवा देगा। पर इतने दिन सुन्दरी का लज्जावन्त मुख कैसे देखा जायगा। वह भी मॉ बहिन तथा अपनी सखियो मे मेरी प्रतिष्ठा कैसे बनाये रख सकेगी? तो क्या? तो

क्या ?······ ···तो क्या यह ठीक है; नहीं, बुरा क्या है ? । तीस रुपये से कल काम चालू कर दिया जायगा । शेष बचे तीस रुपयो से वह एक दो हलकी चीज़े बनवा ले और जब दस दिन बाद ट्यूशन की आमदनी हो ही जायगी तब उसे इधर लगा देगा। इसमे कोई पाप नही। वह रुपया मार थोड़े ही रहा है। यह निश्चय कर, वह तुरन्त लौट पड़ा और शहर की ओर चल पड़ा। शहर कोई चार मील दूर था । तीसरा पहर था । वह चीज़ लाकर रात के बाहर बजे तक लौट सकता है। वह जल्दी जल्दी डग बढ़ाकर चला जारहा था। रुपये उसकी अण्टी में लगे थे। वह निश्चिन्त था और इस बात से प्रसन्न भी था कि कठिनाइयो को पार करने का इतना सहज मार्ग निकल आया। वह इस संयोग पर आश्चर्य कर रहा था कि कैसे जिस दिन उसके हाथ मे रुपये आये उसी दिन घर मे यह प्रश्न उपस्थित हुआ! उसने सोचा कि कोई भाग्यवादी या ईश्वरवादी होता तो कहता कि ईश्वर ने हाथ मे रुपये इसी समस्या को सुलझाने भेजे थे। और वह चला जा रहा था धुन मे कि शहर से गॉव को जाते हुए डाकिये ने आवाज़ दी—धीरेन्द्र बाबू—

धीरेन्द्र चौंका। उसे रास्ते मे किसी के मिलने की सम्भावना न थी। सामने देखा गॉव का डाकिया था। डाक ले जा रहा था। उसने कहा—आपकी चिट्ठी है। धीरेन्द्र ने देखा उसके प्रिन्सीपल की चिट्ठी है। वह खुशी खुशी चिट्ठी पढ़ते शहर की ओर चलने लगा। प्रिन्सीपल ने और बहुत सी अपनी और कालेज तथा देश

विदेश की बाते लिखकर उससे पूछा था, क्या, क्या प्रोग्राम है, गर्मी की छुट्टियो के। अन्त में एक पंक्ति मे उन्होंने लिखा था— "तुम्हारे नौकर द्वारा मुझे तुम्हारा पत्र और पुस्तक मिली। धन्यवाद! मै तो बिल्कुल भूल ही गया था। तुम बड़े अच्छे लड़के हो"। धीरेन्द्र को होश आगया, नागरिक शास्त्र की बात उसे याद आगई। उसने अण्टी पर हाथ रक्खा, सब रुपये ज्यो के त्यो थे। वह लौट पड़ा, उसे अपने हृदय के दूर के कोने मे अपनी स्त्री का मलिन मुख और माँ-बहिनो की रोष भरी आँखे दिखाई दी। वह कुछ काँपा अवश्य, पर दृढ़ता पूर्वक उसने उस दृश्य को ठुकराने का काम उसके पैर ने भी किया। और उसे प्रतीत हुआ कि कोई गेंद जैसी वस्तु उछल कर रेत से निकल कर सामने जा पड़ी है। उसने उसे उठा लिया। कौतूहल मे देखा, वह एक पोटली थी और उसमे किसी की कमाई के, पचास रुपये कागजो के रूप मे गुड़मुड़ मुँह बन्द किये पडे थे, मानो अपने मालिक से नाराज़ हो उठे थे। उसने उन रुपयो का स्वागत किया। यह तो पाई वस्तु है, इससे ही गहने बनवा लूँ। पाई वस्तु पर पाने वाले का ही अधिकार होता है। नई दुनियाँ का जो हिस्सा जिसे पा गया था वही उसका होगया था। वह इस समय ईश्वर को अनायास धन्यवाद दे गया, मैं अपनी स्त्री के क्रंदन को नहीं ठुकरा सकता। तभी तो वह मेरी सहायता पद पद पर कर रहा है यह पोटली तो मेरी है, उसके हृदय मे कभी पढ़ा हुआ एक गीत याद आने लगा—

तू दयालु दीन हौ, तू दानि हौ भिखारी—

वह लौट पड़ा था। और शहर की ओर चल रहा था। वह गीत उसकी विचार धारा को रोके उसे मुग्धावस्था मे किये शहर के पास ले आया। वहाँ कुछ लोग उसके जाने पहिचाने मिले। उनसे ध्यान बँटा। मुग्धता टूटी। व्यावहारिकता की बाते होने लगी। नागरिक-संस्था खोलने का इस शहर मे भी विचार हो रहा था, शहर था तो क्या? नागरिक-संस्था तो गाँवो मे भी आवश्यक है, इस प्रकार बाते करते वे सराफे की ओर जा रहे थे। तफरीहन इधर उधर के साइनबोर्ड भी पढ़ते जाते थे। उसकी दृष्टि पड़ी—" सिटी पुलिस आफिस "। वह रुका। फिर पुलिस आफिस की ओर बढ़ा। साथियो ने कहा—आप तो सराफे जा रहे थे। उसे एक क्षण अपनी स्त्री, माँ-बहिन के मुख झिलमिलाते दिखाई पड़े। फिर उसे प्रिंसीपल का पत्र याद आया—नागरिकता, उसने कहा—नही मुझे पुलिस थाने मे ही काम था। वह पुलिस मे चला गया और पाये हुए रुपये जमा करा दिये। वह एक दम यह समझ गया था कि रुपये दूसरे की कमाई के थे। उनका पड़ा मिलना नई दुनियाँ के समान नहीं, फिर कौन कह सकता है कि इस प्रकार नई दुनियाँ को अपना बनाना उचित था। धीरेन्द्र लौट आया। साहस पूर्वक अपने घर के विषाद को झेलना ही अब उसका कर्तव्य था।

× × ×

कई दिन होगये। ग्राम्य-सुधार का काम धीरेन्द्र के हाथो बड़ी

तेज़ी से चल रहा था। जिस नागरिक कर्तव्य के उन्माद के लिये उसने अपने अन्तर उन्माद की बलि चढ़ा दी, जिसके लिए घर के विषाद का विष पीकर वह आज शिव बन गया था उसमे कोई कमी कैसे रहती उसके कार्यों की पास पड़ौस मे बड़ी चर्चा थी।

आज अपने घर बैठा सुरेश एक ऐसा चार्ट बना रहा था कि गाँव के किस खेत मे किन रसायनिक द्रव्यो का अभाव है, और उसे कैसे पूरा किया जा सकता है कि डाकिया एक अखबार रख गया।

धीरेन्द्र ने अखबार उठाया। पन्ने पलटे। अपने शहर के समाचारो को देखकर चौक पड़ा, एक समाचार था—

खोये रुपये मिले—किसान की जान बची।

कुछ दिन की घटना है कि धिमसिरी गाँव का एक भोपतिया नाम का किसान घर से ५०) रुपये लेकर शहर मे जमीदार को क़र्ज चुकाने जा रहा था। वे रुपये उससे रास्ते मे गिर गये। वह जमीदार के यहाँ पहुँचा, तो रुपया न दे सका। जमीदार ने उसे क़ैद करा दिया। बेचारे के बच्चे रोने विलपने लगे। भाग्य की बात कि वे रुपये मौजा कामदन के एक उत्साही नागरिक कार्य करने वाले युवक धीरेन्द्र को मिल गये। वे पुलिस मे जमा करा दिये गये। पुलिस ने कल पता लगाकर भोपतिया किसान को दे दिये। किसान मुक्त हो गया।

ज़मीदार ने भी उससे ४०) रुपये ही लिये। धीरेन्द्र और पुलिस धन्यवाद के पात्र है। "

धीरेन्द्र का सिर झुक गया। नागरिक-शास्त्र के शब्द उसकी आँखो के सामने नाचने लगे। यदि उसने रुपये अपने काम मे ले लिए होते तो बेचारे किसान का क्या होता। सहानुभूति से उसके नेत्र साश्रु हो गये। वह विकल होकर खुली हवा मे निकलने को तेज़ी से किवाड़ खोलकर बाहर निकला कि दर्वाज़े पर एक आदमी का धक्का लगा। वह चौककर झिझका और रुक गया। उसने उस नवागन्तुक को देखकर क्षमा माँगी और पूछा आप कौन ? कैसे ?—

उस आदमी ने कहा—मै भोपतिया किसान, अपने मुक्तिदाता के दर्शन...........

धीरेन्द्र बदहवास हो गया।, उसका मुँह बन्द कर दिया और उससे प्रेम से चिपट गया।

६

हठ का अभिशाप

अपने हित को सीधे-सच्चे रूप मे भी ठीक ठीक कौन समझ सका है ? हमारा हित हम से ताल ठोक कर संघर्ष करता है, हम उसे अपनाना नही चाहते। वह हमे एक अद्भुत भॉति से अपनी पकड़ मे ले लेता है। विवश होकर ही हम उसे अपनाते है। यह बात प्रकाश और उसके दल के लोग भली भॉति जानते थे। समाज मे, राष्ट्र मे, राजनीति मे, सबमे सुधार अथवा परिवर्तन करने वालो को इसीलिए कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। मनुष्य अपने अनहित और अपनी हानियो को सहता हुआ भी पुरानी चाल ढाल मे रहना पसन्द करता है। तो जब प्रकाश

पाँच छः साथियो को लेकर क़स्बा ऐदिलपुर में गर्मियो की लम्बी छुट्टियाँ बिताने आया और अपने सुधारवादी प्रोग्राम को कार्यान्वित करने का यत्न किया तो उसे आश्चर्य न हुआ कि इतने हित की बातो का भी ऐसा विरोध क्यो किया जा रहा है ?

प्रकाश बी० ए० की परीक्षा दे चुका है। उसके सभी साथी विद्यार्थी हैं। कोई एम० ए० के विद्यार्थी हैं, कोई बी० ए० के। सभी अर्थशास्त्र का अध्ययन करते हुए जब किसान और कारीगर की आय-व्यय का चिट्ठा तैयार करने अपने शहर के आस-पास के गॉवो मे भटकते थे तो उन्हे उनकी ग़रीबी से भी ज्यादा खटकने वाली बात उनका अज्ञान, काहिली और गन्दगी लगी थी। युवक भावुक थे। हृदय में अपने जीवन को कुछ उपयोगी बनाने की धुन भी थी। खा-पीकर मौज़ उड़ाने मे उन्हे विश्वास नहीं था। उन्हे ऐसा लगता था कि जिन देशो मे प्रत्येक निवासी को भर पेट भोजन मिल जाने की व्यवस्था है, वहाँ के निवासी यदि मौज उड़ाने के शौक़ को पूरा करे तो क्षम्य हो सकते है किन्तु भारत मे अभी मौज उड़ाने का भाव अनाचार है और अनुचित है। जीवन को आज दिन अधिक से अधिक दूसरो के लिये उपयोगी होना चाहिए। उसे अपने से विचारो के पॉच छः विद्यार्थी और मिल गये। सबने मिलकर गर्मी की छुट्टियो का प्रोग्राम बना डाला। सोच रहे थे एदिलपुर गॉव को सब मिल कर इन छुट्टियो मे ही आदर्श बना देगे। जिस काम को गॉव वाले न करेंगे, उसे वे अपने हाथो कर डालेगे। ᐧᐧᐧफाई का काम सब

से अधिक महत्त्व रखता है। वे स्वयम् अपने हाथो गॉव की गलियो की भाड़ू लगायेगे। उन्हे जब दो महीने साफ रहने की आदत पड़ जायगी तो फिर गन्दे न रह सकेगे और अपनी सफाई स्वयम् करने लगेगे। हम छः सात है। दिन मे घर घर मे जाकर सिर पड़कर पढ़ाएँगे तो पहले महीने मे ही गॉव भर को पढ़ा लिखा देगे। ऐसा यत्न करेगे कि गॉव वालो पर उनका किसी प्रकार का अभिमान प्रकट न हो। वे उन लोगो मे उन्ही की भॉति उन्ही का सा मोटा खाना-कपड़ा व्यवहार मे लाते हुए रहेगे।

बहुत सीधे-सादे वस्त्र पहने वे गॉव मे पहुँचे। वहॉ बड़े कौतूहल से उनका स्वागत हुआ। किसी ने समभा खुफिया पुलिस के आदमी हैं। किसी ने कहा कॉग्रेसी है। किसी ने बताया ईसाई बनाने आये है। एक आदमी उसी दिन शहर से आया था। वह वहाँ कही सुन आया था कि एक बड़े ठाट बाट वाला आदमी धोखा देकर एक भले आदमी को ठग ले गया, उसने अपने दो चार साथियो को अकेले मे बड़ी समभदारी दिखाते हुए बतला दिया कि देखो, सावधान रहना। किसी दिन किसी के गाय-बैल न खोल ले जायॅ। आज कल के ठग देखने मे बड़े भलेमानुस लगते है। उनके असली उद्देश और अर्थ को कोई भी न समभ सका और पहले ही पहल समभे भी कैसे? जो अनुमान लगाये जाते है वे शक की बराबर होते है—उनमे भय और आशङ्का का भाव विशेष रहता है। ऐसे अस्थिर और आशङ्कापूर्ण विचारो के रहते हुए भी प्रत्यक्ष भले मनुष्यो का आदर शिष्टाचार वश ही

किया जाता है। फिर इनका तो सबसे पहले नवलराय ने सत्कार किया था जो गॉव का ज़मीदार था। उसके यहॉं जिसकी इज्ज़त है उसका आदर सारा गॉंव करना ही चाहे। गॉव वालो ने नवलराय को इनका सत्कार करते देखा था। बात यह हुई थी कि जब वे गॉंव में घुसे तो न जाने कहॉ से एक दूर पड़े कुत्ते ने इन्हे देख लिया। उसे इनकी अपरिचित अद्भुत शक़्ल देख कर कौतूहल हुआ। यह आज गॉव मे कौन आगया रे? इस अभिप्राय से उसने एक "भूँ" की। पड़ौस के छप्पर मे खाट के नीचे से कुछ ऑखें खोले कुछ मूँदे एक और महाशयजी ने अपना सिर ज़रा बाहर निकाल कर देखा क्या है? उनको भी ये लोग दीख गये; फुर्ती से उठकर एक ॲगड़ाई ले कान फड़फड़ा कर उन्होने जरा दोबार दोहराते हुए कुछ तीव्र स्वर मे पूछा—भूॅ-भूॅ, अरे भाई, आख़िर, सच ये कौन हैं? एक कुत्ता अपनी खुराक की फिराक़ मे एक घर मे घुस रहा था कि लौट पड़ा, और जो भी दो तीन इधर उधर थे आ उपस्थित हुए। अब क्या था, उस सेना ने ज़ोर से भूॅकना शुरू किया। लड़के आपस मे खड़े एक दूसरे का मुॅह ताकने लगे। बोले—कहो, कैसा स्वागत हो रहा है! एक डण्डा लेकर भी न चले। कैसे दॉत निकाल निकाल कर दौड़े पढ़ रहे है। अभी तक ये कुत्ते दूर से ही चीख़ पुकार कर रहे थे कि पड़ौस के मकान का दरवाज़ा खुला और एक बुलडौग उसमे से बाघ की भॉंति उछल कर इन लोगो पर रूर पड़ा। ये लोग सॅंभले-सॅंभले कि वह देशी कुत्तो का दल भी उन पर उछल-कूद

मचाने लगा। बड़ी आफत मे थे। एक ही बेत था। एक ओर से रक्षा करते दूसरी ओर से आक्रमण होता। अभी तक हाथा-पाई की नौबत नहीं आई थी। एक-आध के कपड़ो पर तो मुँह मार दिया था पर शरीर बचा हुआ था। भय था कि यह बुलडौग अवश्य किसी को घायल कर देगा। वह अपनी पिछली टाँगो पर खड़ा हो हो कर इनका सामना करता था। बड़े भयभीत थे कि आवाज़ आई—"बुल-बुल लौटो। यह क्या कर रहे हो ?" युवको ने देखा एक प्रौढ़ मनुष्य है। अमीरी सारे शरीर मे चिकना गई थी। मलमल का हलका कपड़ा, लखनवी कढ़ाव, मखमली जूते, आँखो मे हलकी खुमारी। बुलडौग इन्ही का था। उनकी आवाज सुनते ही पहले तो वह तेज पड़ा किन्तु तीखी फटकार ने उसे मायूस कर दिया। वह मालिक की आज्ञा से घर लौट पड़ा। ये प्रौढ़ ही नवलराय थे। उन्होने बुलडौग की करतूतो पर क्षोभ प्रकट करते हुए, इन युवको का स्वागत किया। वह समझ गया कि ये कहीं पढ़ने वाले लड़के है। अपने यहाँ बैठाया। शरबत पिलाया। खूब खातिरदारी की।

गाँव वालो ने भी इनका स्वागत किया, चाहे मनमे कैसे ही भाव थे। इनके पढ़े लिखे होने का भी कुछ प्रभाव पडा। इन लोगो को रहने को एक अलग झोपड़ी दे दी गई। पहले इन लोगो ने उस झोपड़ी की व्यवस्था की। उसे अपने मनके अनुसार ठीक रूप मे सजाया। एक ओर छोटा सा पुस्तकालय और वाचनालय छप्पर डालकर खड़ा कर दिया गया सामने एक वाड़ी और

बगीचा लगा दिया। उसमे शाक-भाजी भी थी और फूल भी थे। अपनी सारी सफाई अपने हाथो करते थे। अपने स्नान और कपड़े धोने का स्थान अलग कोने मे बनाया गया था कि उसका पानी पेड़ पौधो मे न जाय। इस प्रकार धीरे धीरे उनकी झोपड़ी आठ दस दिन मे ही सुन्दर हरी-भरी दीखने लगी।

अब लोगो को उन पर श्रद्धा होने लगी थी। शाम को प्रति दिन प्रकाश के पास गॉव के चार पॉच आदमी हार से लौटते बैठ जाते थे। वह उन्हे स्वच्छ सुन्दर जल पिलाता था। किसी किसी दिन ठण्डाई भी बना देता था। बैठ कर वह उन्हे रामायण सुनाता था। रामायण के पाठ का नित्यक्रम लग गया। वे कथा मे जगह जगह पर चौपाइयो के आधुनिक दृष्टि से अर्थ करते हुए नागरिकता की बातें समझाते जाते थे। उन्होने रामायण को धार्मिक उपदेश के लिए चुना था। धीरे धीरे आने वालो की संख्या बढ़ गई। सभी उन लोगो की प्रशंसा करने लगे। स्त्रियॉ भी आने लगी। वे गॉव वालो की हर बात मे सहायता करते थे। गॉव वाले अब उन्ही से सलाह लेने आने लगे। इसका असर नवलराय पर बुरा पड़ा। उनकी चौपाल की शोभा उड़ गई। जो लोग नवलराय की चौपाल पर बैठकर इधर उधर की गप-शप मे और उनकी खुशामद मे लगे रहते थे वे भी रामायण सुनने जाने लगे। जो सलाहे पहले नवलराय से ली जाती थी वे अब उनसे न ली जातीं थीं। इन सब बातो से रह रह कर नवलराय का जी कुढ़ने लगा। उसे ऐसा लगा कि उसका सम्मान

कम हो रहा है। ये कल के छोकरे उसकी इज्जत मिट्टी मे मिला रहे है। अब जिधर भी निकल जाता उसे प्रकाश की तारीफ होते मिलती। उसके नौकर तक रामायण सुनने जाने लगे। वे भी उसकी प्रशंसा करते थे। उसे जहाँ पहले अपनी प्रशंसा सुन मिलती वहाँ प्रकाश की प्रशंसा उसके कानो मे पड़ती थी। इससे बढ़कर दुःख पहुँचाने वाली बात और क्या हो सकती थी? नवलराय ने सोचा, मैंने अच्छा इनका स्वागत किया! किन्तु अब तो कोई विधि इनको नीचा दिखाने की होनी चाहिये।

× × ×

उधर प्रकाश केवल रामायण का पाठ ही नहीं करता था, उन्हे स्वास्थ्य और सफाई की बाते भी सिखाता था। अब लोग-बाग अपने घरो को पहले से अधिक साफ रखने लगे। अपने अपने कपड़ो को भी साफ रखने लगे। इन सबका फल यह हुआ कि लोगो के स्वास्थ्य तो सँभले पर घर के कूड़े बाहर गली मे जमा होने लगे। बाहर का ध्यान किसी को न था। प्रकाश ने देखा यह गली का घूरा तो किसी दिन भीषण बीमारी उत्पन्न कर देगा और सारे गाँव को उसके कारण बडी हानि उठानी पड़ेगी। पास-पड़ौस में उसने देखा बहुत से गड्ढे भी हो रहे हैं जिनमे बरसाती पानी भर जाया करता है। अभी गरमी थी, यदि इस ऋतु मे इसका कोई प्रबन्ध न हुआ तो सारा गाँव मलेरिया अथवा हैज़े का शिकार हो जायगा। प्रकाश ने सोचा एक दिन सफाई दिवस मनाया जाय। सब लोग गाँव के घरो की

सफाई करे और कूड़े-करकट को गली मे से उठा कर दूर फेंके। यह गली की सफाई भी सब अपने हाथो से करेंगे। किसी महतर या चमार की सहायता न ली जायगी। सफाई का प्रोग्राम दोपहर तक समाप्त हो जायगा। शाम को गड्ढे भरने का काम होगा। उस दिन शाम को रामायण की कथा कहते कहते आवेश मे उसने गाँव की गन्दगी का वर्णन और उससे हानि की आशंकाएं बतादीं। उसने कहा—तुम्हारा मनकू बीमार है, उसका खचेरा जूड़ी मे पड़ा है, इसका राम पेचिश भुगत रहा है, तुम्हारे गाय-भैंस लट रहे हैं, वे बीमार हैं और इसका कारण है तुम्हारी सुस्ती और गन्दगी। अपनी गलियो को देखो--नाक सड़ जाती है। वही मोरियो का पानी भर रहा है। उसी पर घर का धोबन कूड़ा! सारी गली कीड़ो मकोड़ो और भुनगो से बजबजा रही है। दुर्गन्धि से सर दूखने लगता है। इसे साफ करो—अपने हाथो से साफ करो। कल हम सब लोग यही काम करेंगे। फिर गड्ढे भरने हैं, सब लोग लग जायेंगे तो आनन-फानन मे काम हो जायगा। सफाई हमारी सबसे पहली ज़रूरत है। जो जाति जितनी साफ है उतनी ही तन्दुरुस्त है। उतनी ही बलशाली है। लोगो की समझ मे बात आगयी।

यह ख़बर नवलराय ने सुनी तो आग बबूला हो उठे। अपने लोगो से कहा—ऐसा निकृष्ट काम गाँव वालो को हरगिज़ न करने दिया जायगा। सबकी बुद्धि मारी गयी है। मेहतर का काम करके धर्म भ्रष्ट होना चाहते हैं, ये गॉव वाले। उन कल के

क्रृष्टान छोकरो की बातो मे आगये हैं। गाँव वालो ने नवलराय की ये बाते सुनी और मुस्करा दिये। वे पहले ही प्रकाश का बहुत विरोध कर चुके थे। और ये सब बातें उन्होने प्रकाश को आरम्भ मे ही कही थीं। किन्तु इन बीस पच्चीस दिनो मे समाचार पत्रो की ख़बरे सुन सुनकर, अच्छे लेखको की पुस्तके पढ़-सुनकर उनके विचार बदलने लगे थे। नवलराय ने देखा उसकी बातो का कोई प्रभाव न पड़ा। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभातफेरी लगायी गयी और तत्काल ही गाँव की सफाई मे लोग लग गये। दोपहर से पहले ही सारा गाँव जगरमगर कर उठा। सफाई कर चुकने के बाद जब सब गाँव वाले नहा धोकर गलियो मे फिर परिक्रमा करने चले तो अपने गाँव की सुन्दरता पर उन्हे आश्चर्य होने लगा। उन्होने कभी कल्पना न की थी कि इस प्रकार सफाई के बाद गाँव सुन्दर और सुखद लगने लगेगा। इस प्रोग्राम मे नवलराय ने कुछ भी भाग न लिया। वरन् अदबद के वह अपने घर का कूड़ा अपने घर के सामने डालने लगा। जब गाँव वाले उसे हटाने पहुँचे तो कहा—ख़बरदार जो हमारी ज़मीन मे पैर रक्खा। सिर फोड़ दूंगा। लोग हट गये। सारा गाँव जगमगा रहा था और नवलराय का पड़ौस भिनभिना रहा था।

शाम का प्रोग्राम आरम्भ हुआ। एक राष्ट्रीय गीत गाते हुए गाँव के नवयुवक फावड़े और डलियाँ लिये निकले मानो राजपूत युद्ध को जा रहे हो। सब जुट गये। आन की आन मे गाँव के पास-पड़ौस के छोटे मोटे गड्ढे भरवा दिये गये। अब बारी थी

नवलराय के मकान के पास वाले गड्ढे की। प्रकाश का दल वहाँ पहुँचा। पर नवलराय तो आज ठान चुका था। वह इस गड्ढे को नही भरने देगा, नहीं भरने देगा। नवलराय की ज़िद चिढ़ मे परिणत हो चुकी थी। प्रकाश ने कहा—वीरो, इस गड्ढे को और भर दो। नवलराय ने पुकार कर कहा— खबरदार! जो उधर जरा भी क़दम बढ़ाया तो सिर फोड़ दूंगा। यह गड्ढा नही भरा जायगा।

प्रकाश ने उन्हे गड्ढे की हानियॉ समझाई किन्तु नवलराय अपनी जिद पर अड़ा रहा। उसने लठैत इकट्ठे कर रखे थे। वह आज प्रकाश की हड्डी पसली तोड़ डालना चाहता था। पर प्रकाश ने अवसर न दिया। उसने कहा--देखिये, इससे सारे गॉव को हानि है। आप नागरिकता की इतनी बात समझिये कि आप अपने घर मे भी कोई ऐसा काम नही कर सकते जिससे दूसरो को हानि हो। उत्तर मिला--" जिसको हानि हो वह चला जाय, यह गड्ढा ऐसा ही रहेगा "। प्रकाश ने कहा—तो लौट चलो भाई। हमे झगड़ा नही करना।

पर नवलराय की बातो का असर गाँव वालो को क्रोधी बना रहा था। उन्होने सोचा हमे हानि होगी, इस गॉव को छोड़ कर चले जायँ! अच्छी कही! नही यह गड्ढा भरा जायगा और अभी।

लोग दौड़े। उधर नवलराय ने भी अपने लठैत खड़े कर दिये।

लोगो पर जैसे भूत सवार था, आन की आन मे पचासो डलियाँ मिट्टी से भर गई। वे गड्ढे मे डाले जाने को थी कि लठैतो ने रोक दिया। प्रकाश ने देखा बिना लाठी चले न रहेगी। उसने शान्त शब्दो मे गॉव वालो को समझाया कि जल्दी मत करो। नवलराय जी को अपनी भूल मालूम होगी और वे आपकी बात मानेगे।

प्रकाश का आदर बढ़ गया था। सारे गॉव वालो ने उसकी बात मानली और लौट पड़े। उस दिन शाम को सफाई दिवस के उपलक्ष मे सारे गॉव मे दीपावली मनायी गयी। गॉव तारो से जगमगाने लगा।

नवलराय के घर के आगे कूड़ा बढ़ रहा था। दुर्गन्धि तीव्र हो रही थी। जो भी वहॉ से होकर गॉव मे घुसता नवलराय को तो कोसता और गॉव की प्रशंसा करता। पर नवलराय की जिद उन छोकड़ो की बात मानले ! आखिर बरसात आगयी। सामने पड़ा कूड़ा पानी के संसर्ग से सड़ उठा। गड्ढे के पानी मे मच्छर पैदा होने लगे। पर वाह रे नवलराय !

आखिर जो होना है वही हुआ। नवलराय का बड़ा लड़का मलेरिया से बीमार पड़ा। फिर दूसरा पड़ा, तीसरे को क़ै-दस्त होने लगे। गॉव वाले घबड़ा रहे थे। क्या करे ? नवलराय ने बड़ा नामी गिरामी डाक्टर बुलाया। उसने नवलराय के घर के आस पास की गन्दगी देखकर नाक दबा ली और उलटे क़दम लौटता हुआ बोला—माफ कीजिए, जहॉ साक्षात् मौत नृत्य कर

रही है वहाँ डाक्टर कुछ नहीं कर सकता। नवलराय जी! आप यह नहीं देखते कि जब तक यह गन्दगी है तब तक आपके घर से बीमारी दूर नहीं हो सकती। और आप जो रुपया दवाओ मे खर्च करते हैं उसे पहले इस गन्दगी को हटाने मे खर्च कीजिए। जब यह साफ हो जायगा तभी मै आपके घर मे क़दम रख सकूंगा। नवलराय का मुँह फीका पड़ गया। उसे आज अपनी ज़िद का भीषण परिणाम दिखायी देने लगा। घर मे लड़को को मृत्यु घेरे पड़ी थी। डाक्टर की सहायता तक नहीं मिल सकती थी। उसके घर के कूड़ो के ढेर कितनी भीषण दीवारो की भाँति डाक्टर का मार्ग रोके खड़े है। वह क्या करे? मेहतरो और चमारो से उठवाने मे और गड्ढे भरवाने मे हफ्तो लग जायँगे। कोई रास्ता न था। आखिर उसने मान-अपमान के प्रश्न को भूलकर प्रकाश से सलाह लेना उचित समझा।

प्रकाश के पास जब वह पहुँचा तो उसकी झोपड़ी की सुन्दरता को देखकर वह अवाक् रह गया। उसने प्रकाश से अपने व्यवहार की क्षमा माँगी और अपनी कष्ट-कथा सुनायी। प्रकाश ने कहा—देर आयद दुरुस्त आयद। जब समझ जायँ तभी ठीक है। ठोकर खाकर बुद्धि आती है। उसने गाँव वालो से प्रार्थना की कि अब समय आगया, अब चल कर गड्ढा भरिये और सफाई कीजिए। सारा गाँव पिल पड़ा। नवलराय फावड़ा लिये हुए सबसे आगे थे। आज उन्हे सफाई का ही नहीं परिश्रम का भी मूल्य मालूम पड़ा। उन्होंने आज यह भी अनुभव किया

कि मेहतरो और चमारो को ऐसे पवित्र कार्य के कारण ही अछूत कहना कितनी बड़ी भूल है। थोड़े समय मे सारी गन्दगी वहाँ से दूर होगयी। गड्ढा भर गया। उसका पानी सूख गया--गाँव से बीमारी नेस्तनाबूद हो गयी।

प्रकाश अब उस गाँव मे नहीं। कालेज खुल जाने पर उसका दल गाँव से लौट गया, किन्तु उनके कार्य मे कोई शिथिलता नहीं पड़ी। नवलराय ने उनका काम सँभाल लिया है। गाँव अब सब मिलकर चल रहा है। नवलराय की प्रतिष्ठा पूर्ववत् हो गयी है।

७

न्याय के लिये

हरेकृष्ण बहुत उदास होगया। वह प्रायः सभी रेलवे अधि-कारियो के पास जा चुका था किन्तु कोई भी उसकी बात सुनने को तैयार न होता था। इससे कहो; नही, उससे कहो; नही, फलॉ से कहो या अमुक से कहो। इस प्रकार उत्तर देकर टाल बताना भर ही क्या अधिकारियो ने सीखा है? क्या थर्डक्लास के यात्रियों की चिन्ता करना उनका कर्तव्य नही, वह भी ऐसे आवश्यक अभाव के सम्बन्ध मे। गाड़ी भरमे पाखाने के नलो मे पानी नहीं। कैसे रास्ते भर काम चलेगा? यहीं से गाड़ी बनती है। यहीं उसको सब प्रकार तैयार कर देना चाहिए। पर इन्हे अपने

अधिकार मे कुछ समझ ही नही पड़ रहा। अगर फर्स्ट या सैकिड क्लास ने का यात्री कोई शिकायत करे तो कैसे अभी सारा स्टेशन काँप उठेगा। अब जरा से प्रबन्ध की हमारी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। स्टेशनमास्टर के पास वह गया, गार्ड से उसने कहा; असिस्टेटो पर वह भागता फिरा। जो काम अपने कर्तव्यवश उन्हे स्वयं कर देना था, वह सुझाने पर भी नही किया जा रहा। उसने एक बार फिर स्टेशनमास्टर के दफ्तर की ओर क़दम बढ़ाया किन्तु उसे स्टेशनमास्टर मिले ही नही। वह क्षुब्ध हो उठा। घड़ी मे १२.५ हो चुके थे और गाड़ी १२.७ पर जाती थी। वह सोच रहा था कि इस प्रकार यदि इन अधिकारियो की लापरवाही को सह लिया जायगा, यो अपनी सुविधाओ की उपेक्षा सह ली जायगी तो कभी ठीक नही होगा। उसने अपने साथियो को उकसाया कि और कुछ नही तो हल्ला ही मचाये। कौन हल्ला मचावे? हमे क्या- ग़रज पडी है? हम तो रेल मे कभी शौच जाते ही नहीं? पानी नही है न सही, थोड़ी थोडी देर बाद स्टेशन आते ही है, चाहे जितना पानी लो! हमे तो अपने घर पहुँचना।

सब यही समझ रहे थे कि हरेकृष्ण की लडकी का विवाह है। हरेकृष्ण जनता की इस हृदय-हीनता और सकुचित स्वार्थपरता को देख कर मन मे दुखी हो उठा। भगवन्! यहाँ भारत के लोग कैसे क्षुद्र हो गये हैं। ये अपने इस क्षण को ही देख रहे है। इस समय इन्हें जिसकी आवश्यकता नही है समझते हैं उसकी इन्हे

शायद कभी आवश्यकता न होगी। और दूसरो की कठिनाई और कष्ट को तो वे जाने ही क्या? नागरिक भाव इनमे है ही नही। वह क्या करे? जो बात उसके सामने आगयी है उसे अधूरा छोड़ने वाला वह प्राणी न था। पहले तो उसने सोचा जाने दे। जब सबको फिक्र नही तो वही क्या करे? कोई भी काम मिल कर अच्छा होता है। गार्ड सीटी दे रहा था। उसने कहा चलोजी .. पर दूसरे ही क्षण उसने कहा—नही, ऐसे गाड़ी को नहीं चला जाने दिया जा सकता। बिना यात्रियो को सारी सुविधाऐं दिये ये गाड़ी चला ही कैसे रहे हैं?—नही।

वह गाड़ी मे चढ़ गया था। हरी झण्डी दिखाई जा चुकी थी। ऐंजिन ने अन्तिम सीटी दी और चल दिया। गार्ड मुस्करा मुस्करा कर अपने सहयोगियो का अभिवादन करके छुट्टी ले रहा था कि उसने देखा अभी उसका डिब्बा उसके पास नही आ पाया और गाड़ी रुक भी गयी। सुनाई पड़ा, किसी ने जञ्जीर खींच दी है। तलाश होने लगी। आख़िर हरेकृष्ण पकड़े गये। उन्होने कहा-गाड़ी को वह हरगिज़ उस समय तक नही चलने देगे जब तक रेल मे पानी का प्रबन्ध नहीं किया जायगा।

रेलवे कर्मचारियो ने यह अनुमान ही न किया था कि यह मामूली सा आदमी इस सवाल को यह रूप दे देगा। उन्होने जिस समस्या को टालना चाहा था वह अब और न टल सकती थी। अब तो सभी कहने लगे—हाँ, ठीक तो है। क्यो नही पानी दिया?

कितनी परेशानी उठानी पड़ती है। भाई, इसका साहस खूब है। अब जुर्माना देना पड़ेगा। नही जी!

अधिकारियो को विवश होकर पानी भरवाने का प्रबन्ध कराना पडा। सभी यात्री तमाशा देखने उतर पड़े और सभी हरेकृष्ण के साहस की प्रशंसा कर रहे थे। जब उसके फल स्वरूप पानी पहुँचाया गया तो सभी की दृष्टि मे हरेकृष्ण बहुत ऊँचा उठ गया। रेलवे अधिकारियो को इतनी भीड़ के सामने बहुत लज्जित होना पड़ा। उन्हे भय लगा कि गाड़ी के लेट हो जाने का उत्तरदायित्व उन्ही पर पड़ेगा। उनसे ही पूछा जायगा कि क्यो बिना प्रबन्ध के गाड़ी चलादी। अच्छा हो यदि यह व्यक्ति गाड़ी रोकने का कोई और कारण बतादे। किन्तु वह निश्चित था। उसका नाम पता लिख लिया गया। गाड़ी चली गयी।

× × ×

रेलवे ने हरेकृष्ण पर मुक़दमा चला दिया। समाचार-पत्रो ने इस मुक़दमे की सूचना देते हुए टिप्पणी मे लिखा था कि हरेकृष्ण का साहस सराहनीय है। उनके कार्य की उपयोगिता सार्वजनिक दृष्टि से है। हम सभी को थर्ड क्लास मे यात्रा करनी पड़ती है किन्तु हमने कब कोई उद्योग अपने लिये उचित सुविधा प्राप्त करने का किया है। हरेकृष्ण के कार्य का कानून क्या अर्थ लगाता है यह तो अब देखा जायगा।

× × ×

कचहरी मे बड़ी भीड़ थी। शहर के अनेको लोग घिर आये थे। सभी हरेकृष्ण को देखने को उत्सुक थे। उनकी बाते सुनना चाहते थे। कचहरी मे हरेकृष्ण ने अपने भाषण मे कई मार्के की बाते कही। उनका कुछ अंश इस प्रकार था:—

मै इस बात से अपरिचित नही कि नागरिक को सभी वैध नियमो का पालन करना चाहिए। और रेलवे का यह क़ानून है कि जो भी बिना किसी खतरे के जंजीर खीचेगा उस पर ५०) रुपये जुर्माना होगा। मै रेलवे के इस नियम को भली प्रकार जानता था। मैने जान बूझकर ही यह नियम तोड़ा है। इससे मैं किंचित भी अपने नागरिक उत्तरदायित्व से च्युत नही हुआ। नागरिक का जहाॅ यह कर्तव्य है कि सभी उचित क़ानूनो का पालन करे, वही यह भी कर्तव्य है कि भरसक किसी को क़ानून पालन मे प्रमाद न करने दे। उस प्रमाद से किसी सार्वजनिक हित मे बाधा पड़े वहाॅ तो वह और भी नही सहन कर सकता।

मेरे मामले मे सबसे बड़ी बात यह विचारणीय है कि मुझे जञ्जीर खीचने को किसने बाध्य किया। यदि रेलवे कर्मचारियो ने अपने कर्तव्य का यथाविधि पालन किया होता या जब उनसे प्रार्थना की गई थी तब उसे अपने अधिकार मद मे उन्होने तुच्छ समझ कर अवहेलित न कर दिया होता तो मै नियमोल्लंघन क्यो करता मै तो कहता हूँ जहाँ जहाॅ भी अधिकारी अपना कर्तव्य भूल जायँगे, वही इस प्रकार के नियमोल्लंघन के काण्ड

घटित होंगे। जब क़ानून कहता है Come with clean hands शुद्ध रूप मे आओ, तो वह यही चाहता है कि तुम अपनी ओर से गलती मत होने दो, फिर यदि दूसरा ग़लती करता है तो उसको दण्ड मिल सकता है। यहाँ रेलवे ने गलती कर मुझे प्रेरित किया कि मै उनका ध्यान प्रबलता से आकर्षित करने को इस अवैध उपाय का अवलंवन करूं। अतः वे मुझे किसी न्यायालय मे लेजाकर अपने अपराध से मुक्त नहीं हो सकते।

कर्तव्यशून्य अधिकार यानी निरपेक्ष अधिकार कहीं नहीं हो सकते। जहाँ वे है वे अवश्य ही मनुष्य को शोषण करने और गुलाम बनाने के लिये है। वे ईश्वर की सृष्टि को असुन्दर बनाने के प्रयत्न है।

मैंने जञ्जीर अपने स्वार्थ के लिये नहीं खींची। मुझे पानी की किंचित् आवश्यकता न थी। मैंने वह सार्वजनिक हित की दृष्टि से ही खींची थी। मै तो समझता हूॅ कि मैंने जैसा किया, उन परिस्थितियो मे प्रत्येक समझदार व्यक्ति यही करेगा।

मैंने वस्तुतः न्याय की माँग की थी। अधिकारियो को अन्याय करने से रोका था। वह अधिकारी वर्ग जो थर्डक्लास के किराये से अपना वेतन पाता है,फर्स्ट और सैकिड क्लास का इतना ध्यान रक्खे, और थर्ड क्लास की दी हुई मामूली सी सुविधा को भी असुविधा बना देने का यत्न करे, इससे बढ़कर अन्याय क्या होगा? मेरा

पूरा कार्य न्याय्य था। यो न्यायाधीश किन्हीं शब्दो के चक्कर मे भले ही उसे दण्डनीय ठहरावें।

× × ×

सारी उपस्थित जनता ने हरेकृष्ण का भाषण सुना। लोग उसके साहसोद्दीप्त मुख को देखकर और उसके ओजपूर्ण शब्दो को सुनकर रोमाञ्चित हो रहे थे। उनके शरीर मे बार बार बिजली दौड़ती थी। उसके भाषण के बाद एक दम सन्नाटा छा गया। कुछ देर बाद अन्य कार्रवाही, होती रही, अन्त मे न्यायाधीश ने अपना फैसला सुना दिया कि—

हरेकृष्ण का कार्य देखने मे अवैध था। जिस न्याय को इन्होने चाहा था वह तत्काल चाहे उसी विधि से हो सकता हो जिसका उन्होने उपयोग नही किया, किंतु न्याय केवल परिणाम और उसके उद्देश्य को नही देखता, वह तो सम्पूर्ण घटना को एक समझता है। इस प्रकार के न्याय के लिये मार्ग और भी थे, कुछ को उन्होने आज़माया किन्तु असफल होकर उतावले बनने की आवश्यकता न थी। न्याय धैर्य चाहता है। यदि बिना वास्तविक क्षति हुए जञ्जीर खींच ली जाने दी जायगी तो फिर रेलो का ठीक प्रबन्ध कदापि नही हो सकता। मै अभियुक्त के साहस और तत्पर बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ, उसकी परोपकार वृत्ति को भी भूल नही रहा हूँ। उसके प्रति मुझे श्रद्धा है। वस्तुतः कोई भी क़ानून नही तोड़ा गया है। क़ानून शब्दो पर आश्रित है। शब्द यह नही कहते

कि इस प्रकार के कामो के लिये भी उसका उपयोग नही हो सकता है। अतः यह अपराध नही है। मै हरेकृष्ण को मुक्त करता हूँ······।

यह निर्णय देकर न्यायाधीश चले गये। जनता का हृदय हरेकृष्ण के वशीभूत हो चुका था। जैसे ही हरेकृष्ण लौटे—वैसे ही जनता ने जय ध्वनि की—

श्री हरेकृष्ण की जय।

फिर तो उस कोलाहल मे उसे इतनी मालाऐ पहनायी गयीं कि उनके बोझ से वह दब गया।

वह उस दिन का नायक था।

———

८

मेले का मेल

(१)

ककरेजी शामियाने के नीचे एक ऊँचे मञ्च पर रामानन्दी तिलक लगाये गले मे बेले की माला पहने एक हृष्ट-पुष्ट पण्डितजी पालथी मारे बैठे, हाथ-मुँह के साभिप्राय हाव भावो सहित कथा कह रहे थे। उनका कण्ठ सुरीला था। उनके कहने का ढंग प्रभावोत्पादक था। जिस बात को उठाते थे उसी मे रस बरसा देते थे। एक तो रामायण यो ही क्या कम प्रभावोत्पादक है, फिर कही अच्छा कथावाचक मिल जाय! नास्तिक भी आस्तिक हो सकता है, पत्थर भी पिघल सकता है। इस कथावाचक मे ऐसी

कौनसी करामात थी ! जब हारमोनियम के स्वर से मिलकर तबले की थपकियो से थपकती हुई उनके सुरीले कण्ठ की मृदु मधुर स्वर-लहरी थिरकने लगती थी तो श्रोताओ के हृदय एक अनिर्वचनीय आनन्द मे उद्बुद होने लगते थे। वे 'देह गेह सब सन तृण तोरे' रामायण पर उस क्षण सब कुछ निछावर करने को सन्नद्ध प्रतीत होते थे। इसीलिए उनकी कथा मे अपार भीड़ होती थी। चिन्तामणि भी इस अपरिमित मानव समुदाय मे फटे पुराने कपड़ो से अपना सुन्दर शरीर ढके आकर एक कोने मे बैठ जाता था। वह आज भी बैठा हुआ था।

अयोध्याकाण्ड मे बनवास का प्रसंग चल रहा था। इधर पण्डित जी, अपने निजी ढंग मे, स्वर मे भक्ति और करुणा भर कर कही पुष्ट, कही कोमल, कहीं मन्द, कही तीव्र स्वर-रँग देते जा रहे थे—

"रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा।
मुदित मातु पद नायेउ माथा॥"

हारमोनियम मानो उनके स्वर मे विजली का स्पर्श किए दे रहा था। तवला अपनी थपकियो से उसे श्रोताओ के हृदय मे मर्म तक पहुँचाये दे रहा था। उधर सब उपस्थित जनता चुटीली होकर मानो साक्षात् उस दृश्य को देख रही थी—

और चिन्तामणि ! वह तो फूट फूट कर रो रहा था, वहाँ उसके मानस-लोक मे पण्डित जी की कथा के राम चिन्तामणि मे

बदल रहे थे और कौशिल्या का स्थान उसकी माँ वसुमती ने ले लिया था। उसे याद आया एक दिन ठीक इसी भाँति उसकी स्नेहमयी माता ने उसे ललक कर अपनी छाती से लगाया था। तब वह ७-८ वर्ष का था। वह प्रेम-विह्वल हो उठा। माता-पिता के गहरे प्रेम के संस्मरण उसे याद हो आये। वे सुखद दिन! उनके दुलार मे उसके लिये संसार का वैभव भी तुच्छ था। पर आज क्या? वह अनाथ है। पहले उसके पिता गये, एक ओर की दीवाल गिरी। फिर उसकी वह माता! आह! सारा क़िला ही टूट गया। और वह ग्यारह वर्ष की अवस्था मे ही जीवन के कठोर आघातो के लिये निराश्रित रह गया।

चिन्तामणि का हृदय-जगत के एक दूसरे सूखे गर्म झोके से शुष्क हो उठा। उसमे जैसे आग निकलने लगी। आँखो का पानी बिला गया, वे लाल हो आईं। उसे वहाँ गर्मी लगने लगी। अब उसे पण्डित जी की स्वर लहरी स्पर्श नही कर रही थी। वह अपने विचारो मे डूबा था जैसे माँ की पिछली बाते ही सुन रहा हो। वह गर्मी से विकल होकर उठ पड़ा और घर की ओर चल दिया। उसका मानस एक रंग-मञ्च बना हुआ था। जिसमे कभी माता, कभी पिता आकर उपस्थित होते थे। और कही उसी रंग-मञ्च मे एक कोने मे से पण्डित जी की स्वर लहरी मे वे शब्द गूँज उठते थे:—

" बार-बार मुख-चुम्बति माता।
नयन नेह जलु, पुलकित गाता।"

वह इसी प्रकार चलता हुआ एक बड़े फाटक के नीचे से होकर निकला, जिसके ऊपर गोल महरावदार टीन के लम्बे चौड़े बोर्ड पर लिखा हुआ था " स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स लिमिटेड " । वह बाँयी ओर दरिद्र झोपड़ो मे घुसा । एक जीर्ण शीर्ण झोपड़े की टूटी चारपाई पर जाकर वह पड़ रहा ।

" बार बार मुख चुँवति माता । "

उसने हाथ फैला दिये जैसे माता उसे गोद मे चाह रही हो । पर न तो अब माता ही है, और न अब वह गोद के लायक़ है । अब वह २४ वर्ष का जवान पट्ठा है, जिसे फैक्टरी मे कोयले ढोने के काम ने रूखा-सूखा बना रक्खा है । उसने माता पिता को भुला देने की चेष्टा की तो रामायण की याद आगयी । अहा, कैसी अच्छी पुस्तक है ? वह उसे अवश्य खरीदेगा । उसने एक तिखाल मे टटोला, एक रुपया हाथ पड़ गया । जब वह रामायण ख़रीद कर घर मे बैठ उलटने पुलटने लगा तब उसने सोचा व्यर्थ दाम डाले । मै इसे पढ़ तो सकता ही नहीं । वह वस्तुतः निरक्षर था । पुस्तक की प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा मे वह यह बिल्कुल ही भूल गया था कि वह बेपढ़ा है और पुस्तक केवल पढ़े लिखो के ही काम आ सकती है । वह तो पण्डित जी की कथा से प्रेरित होकर कुछ ऐसा समझने लगा था कि पुस्तक आते ही वह सारी बात जान जायगा । पर इस समय जो ज्ञान हुआ उससे उसे भारी धक्का लगा । निरक्षर होने से अपने ऊपर कितना अत्याचार होता है ।

पुस्तक हाथ में है, आँखे हैं, दिमाग़ है, क्या नही ? ईश्वर की दी हुई सभी विभूतियाँ तो है। पर वह कहाँ है कि यह पुस्तक पढ़ी जा सके ? पुस्तक पर अक्षर थे पर उसकी आँखे उन्हे समझे तब न ? वह आज कितने बड़े आनन्द से वञ्चित रह गया······।

(२)

प्रात.काल मज़दूरो की उस बस्ती मे बड़ा कोलाहल था। आज फैक्टरी की छुट्टी थी। शहर से थोड़ी दूर पर ही एक लक्खी मेला होता था। आज सभी वहाँ मेला देखने जायँगे। जो दो चार पैसे उन्होने जुटा लिये थे वे अपनी गाँठ मे बाँध बालक, युवक, बूढ़े, युवती, स्त्री सभी तड़के से ही तय्यारी करके मेले को चल दिये थे। यह उसी का कोलाहल था। चिंतामणि भी झुटपुटे मे उठ बैठा। उसने भी मेले जाने का निश्चय कर लिया। वह दिन भर यहाँ पड़ा पड़ा क्या करेगा ? ज़रा मेले मे तबियत बहल जायगी। उसने रामायण उठाली, भारी हृदय से उसने सोचा, चलो इसे भी बेच आयेंगे। एक ग़रीब आदमी को फ़िजूल की चीज़ रखना शोभा नही देता। उसे लगा जैसे कोई बड़ी भारी सम्पत्ति उसकी निरक्षरता के अपराध मे उसके हाथ से निकली जा रही है। पर वह क्या करे ? उसके माता-पिता ने उसे नहीं पढ़ाया। वह तब बहुत छोटा था और उनके पास साधन कहाँ थे ? तब सरकार भी उनका कहाँ ध्यान रखती थी ? और उसे भी पढ़ने का लाभ आज तक विदित न था। बिना पढ़े लिखे ही लस्टम-पस्टम वह अपना पेट भरने लायक़ कमा लेता है तो पढ

कर क्या करेगा ? वह यह सोच ही न सका था कि पढ़ने की आवश्यकता पेट भरने के लिये नही किसी और सन्तोष के लिए होती है। तो वह रामायण बेच ही आयेगा। उसने अपने कपडे सॅभाले। एक ओर एक गूदड़ मे लिपटे कोट-पेण्ट थे। उन्हे पहन कर उसकी शोभा अठगुनी होगयी। वह वैसे ही बहुत सुन्दर था। बडी बड़ी जवानी के रस मे भरी ऑखे, सुन्दर नाक, छरहरा बदन, गोरा रॅग, इन सबके ऊपर उसकी भॅवे एक विशेष तनाव के साथ आँखो पर बैठी हुई थीं। उसका मुख निश्चय ही मादक सुन्दरता लिखे हुए था। गूदड़ो मे भी, कालौंच के पुत जाने पर भी उसकी कमनीयता छिपती न थी। इस समय तो वह और भी निखर आई थी। इन सज-धज के कपड़ो ने तो उसे चमका दिया. उसे देखने वाले एक क्षण यह सोच सकते थे कि यदि कही यह सुख मे पला होता तो यह सौन्दर्य विकसित होकर आदर्श बन जाता—

खैर जैसा वह था, वह मेले को चल दिया। हजारो आदमी इधर से उधर फिर रहे थे। वहाॅ के दृश्य को देखकर वह रामायण बेचना भूल गया। अनेको विचार उसके मस्तिष्क मे उठने लगे—वह यहाॅ क्यो आया ? क्या इतने आदमियो का घूमना-फिरना देखने के लिये ? या अपनी मेहनत के रुपयो को इन बेईमान बड़े पेट वाले दूकानदारो को ठगाने के लिये ? दूकानो के सामने जाऊँगा, मन ललचायेगा, पर पैसा तंगी के कारण न निकाला जा सकेगा। मन क्षुब्ध होगा। किसी तमाशे के पास जाऊॅगा, वहाॅ भी यही दशा होगी। उसे ठीक याद आया :—

"पैसा नही है पास, मेला लगे उदास"

पर पैसा कितनो के पास है ? जो कुछ पैसा है वह उपयोग के लिए है। अपव्यय के लिये और ठगाने के लिए नही। यहाँ सब ठगाना ही है। फिर इतने लोग क्यो आते हैं ? उसने लौटने का इरादा किया। पर फिर झोपड़ी का सूना और रूखा दृश्य आँखों मे आते ही उसने निश्चय बदल दिया। हर्ज क्या है ? एक चक्कर ही लगा लिया जाय। वह एक ओर से दूसरी ओर को चला। मेले की विलासिता से असन्तुष्ट होता हुआ वह आगे बढ़ता जा रहा था कि एक जगह ठिठक गया।

दो बदमाश एक ओर इशारा कर रहे थे। उधर एक दूकान पर एक सुन्दरी लड़की कुछ खरीद रही थी। इन बदमाशो का इशारा उसी ओर था। चिन्तामणि चुपके चुपके उनके कुछ पास जा खड़ा हुआ, तब उसे सुन पड़ा कि—

"यही है। अकेली अपनी मोटर मे आयी है। जब मोटर की ओर बढ़े तभी‥ ‥"

चिन्तामणि समझ गया। इन बदमाशो का इरादा इस भली सुन्दरी लड़की को ले भागने का अथवा और कुछ करने का है। वह काँप उठा। क्योंकि उसकी अपनी मज़दूर बस्ती मे ऐसी बीसो स्त्रियाँ हैं जो पहले किसी ऊँचे घराने की थी। वे बदमाशो द्वारा पकड़ी गयी। उनकी इज्ज़त मिट्टी मे मिलायी गयी। और फिर सौदर्य ढल जाने पर निकाल बाहर की गयी। फिर गिरती-पड़ती

मजदूरी करके पेट भरने लगी। ऐसी स्त्रियो का सारा जीवन कुछ नही रह जाता, वे केवल उसका बोझ ढोती है। हँसती है तो फूहड हँसी, बोलती है तो फूहड़ वचन! उनका स्त्रीत्व बरबस उनसे छीन लिया गया है। इस कुमारी को देखकर वह सारा जघन्य रूप उसकी आँखो मे नाचने लगा। ऐसा भोला सौन्दर्य, और यो कुचला जायगा? पहले तो उसे उसके माँ-बाप पर क्रोध आया। कैसे है ये लोग जो लड़कियो को इस प्रकार भेज देते है अकेले। फिर सोचा आखिर इसमे लडकी अथवा माता-पिता का दोष ही क्या है? यह तो प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसे हर स्थान पर जाने की सुविधा हो। वह सरकार को कर देता है इसीलिये कि उसकी रक्षा की जायगी, उसे कही खतरा नहीं रहेगा। तो फिर पुलिस को ध्यान देना चाहिए। पुलिस के मेले भर मे चार-पाँच आदमी मिलेगे। वे कठमुल्लो की भाँति खड़े खड़े इधर उधर मेला देखेंगे। उन्हे क्या फिक्र कि किसी पर क्या आफत आने वाली है? और ठीक ही है, उन्हे कैसे खबर हो? कोई सर्वव्यापक थोड़े ही है। हम लोगो को उचित है कि हम ही उन्हे इस बात की सूचना दे। प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है कि वह पुलिस की सहायता करे। पर पुलिस की ज़रूरत ही क्यो पडे? ये बदमाश ही न रहे? आखिर उसने सोचा जमाना ख़राब है। जब तक मनुष्य इतना ऊँचा नहीं उठ जाता कि बदमाश रहें ही नहीं तब तक पुलिस की आवश्यकता रहेगी।

वह पुलिसमैन को तलाश करना चाहता था कि वह लड़की

दूकान से चल दी। वह लड़की का पीछा नहीं छोड़ सकता था। तेज़ क़दम बढ़ाकर वह उसके साथ हो लिया। लड़की ने और सामान के साथ बुनने की दो सलाइयाँ ली थीं। वे कागज़ में ढीली बँधी हुई थीं। उनमे से एक खिसक कर गिर पड़ी। लड़की धुन मे आगे बढ़ रही थी उसे मालूम न हुआ। चिन्तामणि ने वह सलाई उठाई और लड़की के पास जाकर कहा—"देखिये।"

लड़की ने रुककर कुछ रौब मे उसकी ओर देखा। उसने समझा था कि कोई उससे छेड़खानी करना चाहता है, अतः क्रोध था किन्तु चिन्तामणि के शान्त महिमामय सुन्दर मुख मण्डल को देखते ही उसका यह भाव दूर होगया। वह अचकचा कर कह बैठी—"अरे आप है!" चिन्तामणि को आश्चर्य हुआ "क्या आप मुझे पहले से पहचानती हैं?" लड़की को खुद आश्चर्य था कि वह क्या कह बैठी है? उसे अन्तर मे कुछ ऐसा लगा था कि ऐसा आदमी उसका परिचित ही हो सकता है, अपरिचित नही। मुख, आँखो और सूखे भुड़भुड़ाए बालो को एक बार चञ्चल लज्जा से उसने फिर देखा और जो ममत्व उसे उस ओर अनुभव हुआ वह आज तक उसे कभी न लगा था। वह लगभग अट्ठारह वर्ष की थी, कालेज मे पढ़ती थी; सैकिण्ड ईयर मे। वह बिलकुल अबोध न थी अनेको सुन्दर युवक उसे मिले थे, अनेको उसके सहपाठी थे, किन्तु किसी मे उसने यह मोह अनुभव नही किया था। आज ऐसा क्यो? वह लज्जित हो गयी। वह हृदय की बात समझ गयी थी, फिर भी हिन्दू कन्या थी।

न वह स्वतन्त्र थी, न वह समझती थी यह युवक स्वतन्त्र है। उसने थोडे करुण कोमल शब्दो मे कहा—"मुझे कुछ ऐसा लगा कि आप अपरिचित नही हो सकते। आपके मुख पर यह सौहार्द्र और आपकी वाणी मे यह ममत्व किसी और मे नही मिल सकता—क्षमा कीजियेगा।"

चिन्तामणि ने उसी स्तब्ध भाव से कहा—"अच्छा, यह आपकी सलाई गिर पड़ी थी।"

कुमारी ने खेद प्रकट करते हुए सलाई ले ली और बार बार उसे धन्यवाद दिया। उसने कहा कि सलाइयाँ वह अपनी छोटी बहिनो के लिये ले जा रही थी। यह सलाई यदि न मिलती तो घर मे बहिनो मे आज खूब लड़ाई होती। उसे फिर लौट कर मेले मे नई खरीदने आना पड़ता। आपने अच्छा किया, एक संग्राम बचा दिया।

चिन्तामणि को उसकी बातो मे कुछ आकर्षण लगने लगा। वह चाहता था कि उन बदमाशो से रक्षा करने के लिये उसके साथ जाकर मोटर तक पहुँचा दे। उसने पूछा—"मै आपके साथ यदि आपकी मोटर तक चलूँ तो क्या कुछ हर्ज है?" कुमारी भी यही चाहती थी। उसने कहा—"चलिए, कोई हर्ज नही।" वे लोग चल पड़े।

चिन्ता०—"आप अपनी मोटर यहाँ तक क्यो नही लायीं?"

कु०—"मेले में सिपाही ने आने की इजाजत नही दी और

ठीक ही है। इस भीड़ में किसी के लगे करे। यातायात मे विघ्न तो पड़ता ही।"

चिन्ता०—"और आपके साथ कोई आदमी भी नही?"

कु०—"है तो सही आप! वैसे हम लोगो को अकेले में कोई भय नहीं लगता। नौकर था वह कहीं मेला देखने मे लग गया। अब उसे क्या अपनी हिफ़ाजत के लिये पीछे पीछे लगाये रहती? हम लोगो को आप जैसे अच्छे नागरिको की रक्षा का सदा ही भरोसा रहता है।"

चिन्ता०—"और बदमाशो का भय नहीं रहता, क्यो?"

मोटर का अड्डा मेले से एक फर्लाङ्ग दूर था। इस समय मेला भर रहा था; अत. एकान्त था। मोटरो के पास न शोर था, न कोई और व्यक्ति। बाई ओर एक क़तार मे मोटरे खड़ी दिखायी पड़ रही थी। यकायक चार आदमी पीछे से ढक्का देते आये और कुमारी और चितामणि के बीच में पड़ गये। चितामणि तैयार था। उसने एक झपट्टे मे ही दो को गिरा दिया। वह लड़की भी कम चतुर न थी। वह स्थिति समझ गयी। उसके पेटीकोट मे कटार छिपी थी वह उसने तुरन्त निकाल ली। उसे कटार चलाने का मौक़ा न मिला। चिन्तामणि ने उन दोनो को भी दूसरे धक्के से गिरा दिया। वे चारो बहादुर न थे। वे चाल से अपना काम बनाना चाहते थे। पर ये लोग सतर्क होगये। वे धक्के खाकर एकदम भाग गये। उन्हे भय था कि कहीं पकड़ लिये न जायँ। कुमारी ने कटार

निकाल तो ली थी पर वह भयभीत होगयी थी। चीख़ चीख़ कर शोफर को आवाज़ दे रही थी। पर वह वहाँ कहाँ था। चिंतामणि ने स्वस्थ होते हुए कहा—" अब भय की कोई बात नही। आप स्वस्थ हो। अब आप निरापद है।"

वह होश मे आयी। उसने बार बार कृतज्ञता प्रकट की, और चाहा कि उसे अपने घर ले जाय। पर वह तैयार न हुआ। उसने कहा—" इतने निष्ठुर न बनिए, आपने आज मेरी मर्यादा बचायी है। इस आभार से मै अपना जीवन देकर भी तो मुक्त नही हो सकती। आप चलिए, एक बार तो घर चलिये। पिता जी आप से बहुत प्रसन्न होगे।" पर चिन्तामणि को अपनी दुरवस्था का ज्ञान था। वह कुमारी की आँखो मे और मुख पर तथा उसकी वाणी मे जो बात देख रहा था, उससे उसे भय हो रहा था कि वह शीघ्र ही अपने मार्ग से नीचे आ गिरेगा। वह विवश हो जायगा और उसका परिणाम उसके लिये चाहे कुछ न हो, वह तो समाज की सबसे नीची सीढ़ी पर है, पर इस कुमारी का ठिकाना न रहेगा। अतः उसने अपने मन को रोक कर निष्ठुर होना ही उचित समझा। पर कुमारी पर उसका अहसान सचमुच बहुत हो चुका था। वह क्या करे? कुमारी तो एकदम विवश हो चुकी थी।

शोफर आगया। वह मोटर मे बैठी, उसने फिर आग्रह किया और जब उसने देखा कि यह किसी भाँति डिगने का नही, तो पूछा—" आप पढ़े लिखे तो हैं न?"

चिन्तामणि को न जाने किस कमजोरी ने दबा लिया। वह कह बैठा—"हाँ।"

कुमारी—"तो अपना पता दीजिए, मै आपको पत्र लिखूँगी। बोलिये, पता दीजिये, क्या आप इतना भी न करना चाहेगे?" अहसान से और प्रेम से भी, क्योकि सचमुच वह प्रेम मे डूब चुकी थी, आग्रह करते करते उसको रोना आगया। वह कह रही थी—हाय राम! किस चट्टान से मेरा सिर टकरा रहा है। पर क्या करे—

चिन्तामणि चिन्ता मे डूबा हुआ था। पर कुमारी की आँखो मे उन आँसुओ को देखकर उसने पता बता दिया—

चिन्तामणि,
जिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स।

और बिना उधर देखे, दूसरी ओर तेजी से चला गया।

वह लड़की इतने आवेग मे थी कि उसके आँखो से ओझल होते ही ढेर होकर मोटर के गद्दो मे गिर गयी। रह रह कर उसके हृदय मे टीस उठती थी—"हा ईश्वर! आज यह क्या होगया?" मोटर चल पड़ी।

× × ×

उस दिन चिन्तामणि को अपनी भारी भूल मालूम हुई, और उसे अपने ऊपर घृणा भी हुई, जिस दिन एक रजिस्टर्ड पत्र उसे

मिला। ओह! निरक्षरता का अभिशाप! वह समझा था अवश्य ही यह पत्र उस लड़की का है। कैसा अच्छा होता यदि वह पढ़ा होता? और यदि वह कुपढ़ था तो क्या उसे न चाहिए था कि उस लड़की से साफ और सच कह देता कि वह पढ़ा लिखा नही। वह क्यो तो बेपढ़ा है, और फिर क्यो वह झूँठ बोला? इस पत्र को हाथ मे लिये वह उस लड़की की याद करता हुआ उस रात सो गया। लज्जा के कारण वह उस पत्र को किसी के सामने पढ़वा भी नही सकता था। इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया और उस पर एक मुक़दमा चलाये जाने का दावा हुआ।

एक बार अपनी झोपड़ी बनवाने के लिये अपनी जाति के ही एक सेठ लक्ष्मीचन्द से उसने ५०) रुपये उधार लिये थे। वह अपने वेतन मे से काट कर उन्हे चुकाना चाहता था। यह दावा उन्ही सेठ जी ने किया था। रुपया वह चुका नही सका था। आख़िर कोर्ट मे वह पेश किया गया। वहाँ उसने देखा सेठ जी तो थे ही उनके साथ वही मेले वाली लडकी भी वहाँ थी। चिन्तामणि ने उसे वहाँ देखा—लज्जा से उसका मुँह काला पड़ गया। ओह, क्या इस लड़की के पिता है ये सेठ जी? अब लड़की को उस पर कितनी घृणा होगी। ईश्वर, तूने यह कैसा दैवयोग जुटाया है?—

चिन्तामणि को बताया गया गया कि एक सप्ताह पूर्व रजिस्ट्री द्वारा तुम्हे वह ख़बर दी गई थी कि तुम रुपये अमुक तारीख़ तक

चुकादो। क्योकि तुमने रुपये उस दिन तक नही चुकाये इसलिये मुक़द्दमा चलाया गया है। रुक्के की मियाद निकल जाने का डर है। तुमने २००) रुपये लिए थे।—

चिन्तामणि—" २००) रुपये ? "

" हाँ, दो सौ का रुक्का तुमने लिखा उस पर कुछ ब्याज पड़ी है, इस प्रकार २५०) रुपये का दावा है। "

चिन्तामणि की आँखो मे आँसू भर आए। वह यह क्या देख रहा है ? यह सब निरक्षरता के कारण है। सेठ जी ने ५०) देकर २००) रुक्के मे लिखे। उनका भेजा हुआ नोटिस न पढ़ सका। उसने सिर ठोक लिया। बड़े दीन शब्दो मे उसने कहा—महोदय, मैने केवल ५०) रुपये लिए थे। मै बेपढ़ा लिखा हूँ। मेरे साथ फरेब करके ५०) की बजाय रुक्के मे २००) लिखे गये हैं। मैं मज़दूर इतना कहाँ से ला सकूँगा ?—

लड़की ने जब चिन्तामणि को कोर्ट में देखा तो वह बदहवास होने लगी थी। वह अपने मन को रह रह कर समझाती थी कि, ऐसा इसमे क्या है ? यदि उसे सचमुच प्रेम ही है, तो फैसला हो जाने पर वह मियाद डलवा देगी और स्वयम् रुपये देकर इस भले युवक को छुड़ा देगी। इसने उसकी जान बचाई है; वह उसे बचाएगी। पर वस्तुतः देर हो चुकी थी। उसे पहले ही देखना चाहिये था। उसे क्या पता था कि यह इसी चिन्तामणि का मामला है। वह क्षण क्षण घबड़ाई जा रही थी। चिन्तामणि को

उस अवस्था मे देख देख कर उसका कलेजा मुँह को आरहा था कि उसके कान मे सुनाई पड़ा—

"मै बेपढ़ा लिखा हूँ"—ओह ! ओह ! उसका स्वप्न चकनाचूर हो गया—उसका हृदय पके फोड़े के भाँति टीसने लगा। वह चीख़ मार कर बेहोश होगई।—

चिन्तामणि फूट फूट कर रो उठा।

ओह ! निरक्षरता का अभिशाप !!

६

मेरा चोर

डाकगाड़ी से मैं रात मे खुर्राटे भरता हुआ इलाहाबाद जा रहा था। एक स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। मैं यह भली भाँति समझता था कि वह इलाहबाद नहीं, क्योकि अभी रात बहुत थी। इस लिये मुझे इस स्टेशन के सम्बन्ध मे कोई उत्सुकता न थी। किन्तु गाड़ी रुकने से कुछ नीद उचट गयी थी।

और मैं अभी यह सुन रहा था—"पूड़ी साग गरम", "गरम चाय", "चाय गरम", "पान बीड़ी सिगरेट"। इस तुमुल ध्वनि को धक्कासा लगाता मेरे दर्जे का दर्वाज़ा खुला और मैले कुचैले

फटे फटाये कपड़े पहने एक नवयुवक उसमे चुपके से घुस आया। अपने पीछे उसने दर्वाजा भी अचक से लगा दिया।

दर्जे मे सभी यात्री सो रहे थे। कोई पैर सिकोड़े, कोई फैलाये, कोई अपने घुटनो मे मुँह दिये, कोई खिड़की पर हाथ का तकिया बनाये, कोई पैरो को खिड़की पर पसारे, गरज़ यह कि सभी अपनी अपनी तरह पड़े रेल की नींद का मजा ले रहे थे। कोई खुर्र कर रहा था, कोई खो, कोई हलकी 'फु' करता था तो कोई 'सरर कुँ'। विविध नासिकोच्छ्वासो का शब्द उस दर्जे मे गूँज रहा था। उस आदमी को चुपके से घुसता देखकर मै ताड गया कि यह अवश्य चोर या उठाईगीरा है। मै चुप पडे पड़े यह देखने लगा कि यह क्या करता है। जब यह सामान ले चुकेगा तभी पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दूंगा। इस प्रकार मेरा नाम भी हो जायगा। तो, उस आदमी ने चारो ओर सबको सोता देखा, फिर चुपके से सिमिट-सिमटा कर मेरे पट्टे के नीचे घुसने लगा। अब तो इसमें सन्देह ही क्या रह गया कि यह चोर था। नीचे मेरा ट्रङ्क रक्खा हुआ था। उसमे वे गहने रक्खे हुए थे जो गौने पर मेरी स्त्री को पहनाए जाने वाले थे। ऐसे सुन्दर गहने, उन्हे पहन कर मेरी स्त्री का सौन्दर्य कैसा निखर उठेगा—उसकी सौन्दर्य-श्री कैसी चमचमा उठेगी? यह मै अपने प्रथम यौवन की रगीन कल्पना में देख कर उन्मत्त हो चुका था और एक सुखी मादकता में अब भी डुबकी लगा रहा था कि यह चोर, **यह भी** मेरे ही गहनों का—

कालेज मे मै फिलासफी का विद्यार्थी था। अभी तक, यद्यपि, कोई मैने पेड़ से ऐसा सेब पृथ्वी पर गिरते न देखा था कि न्यूटन हो जाता; पर प्रत्येक घटना कोई न कोई विचार पैदा किए बिना मेरे सामने से न जाती थी—चोर मेरे लिये एक समस्या थी। चोर क्यो ? कैसे होते है, ये दूसरो के अधिकार को हड़पने के लिए सदा तत्पर ! उन्हे चोर बनाया किसने ? क्यो बन गये ये चोर ? चोर की इस समस्या ने मुझे इस प्रकार जिन कई कारणो से जकड़ लिया था उनमे से एक यह भी था कि अभी सुबह इलाहाबाद को रवाना होने से पहले मै अपने एक मित्र से जब बिदा मॉगने गया तो उसकी मेज़ पर " अपराध-चिकित्सा " नाम की पुस्तक रक्खी देखी। नाम कौतूहलवर्द्धक था। मैने मित्र से कहा कि यदि आपका हर्ज न हो तो इस पुस्तक को ले जाऊँ। शायद रास्ता आसानी से कट जाय। मित्र ने कहा—मेरे पास तो जब से आई है, यो ही पड़ी है, ले जाओ।

मै उसे पढ़ता आरहा था और एक जगह के शब्द विशेष रूप से मेरे दिमाग़ मे चिपके रह गये थे, वे ये थे—

" एक आदमी दिन भर महनत करके भी जब अपना और अपने परिवार का पालन नही कर सकता और उसके स्वयम् भूखा रहने तथा बाल-बच्चो को जठराग्नि की ज्वाला से व्याकुल देखने का अवसर आता है तब वह यदि अत्यन्त निराश न हो गया हो, तो उसके लिए भिक्षा या चोरी का मार्ग खुला मालूम होता है। ऐसे व्यक्तियो मे से, जो आदमी स्वभाव से या क़ानून-

वश भिक्षा नहीं माँग सकता, या जिसे भिक्षा नही मिल सकती, वह चोरी का अवलम्बन करे तो क्या आश्चर्य है ? "—मुझे चोरो के प्रति कुछ सहानुभूति हो रही थी, और मै यह सोचने लगा था कि हमारा समाज ही उसके लिये दोषी है । पर इस चोर को देख कर मुझे भय उत्पन्न हुआ और मेरी विचार धारा कुछ बदल गयी । ये नागरिको को कितने दुःखदायी है । कोई भी नि.शङ्क बाजार मे नहीं चल सकता, रेल मे नही जा सकता, पुलिस आदि सबसे कुछ करते धरते नहीं बनता । मै सोचते सोचते एकदम चौकन्ना होकर उठ बैठा और झुक कर उस आदमी के दोनो हाथ पकड़ कर पूछा—क्या है ?

एकदम मशीन की भाँति मैने यह सब कर डाला । मै सोच ही रहा था कि मेरे ट्रङ्क के कुन्दे के खटने की आवाज हुई । मेरे रोगटे खड़े होगये । मै बिस्तर पर उछल पड़ा । मुझे लगा कि मेरी सुन्दर स्त्री बिना आभूषणो के रो रही है । मै लुट गया हूँ । मेरा ताला तोड़ दिया गया है । लपक कर बदहवास होकर मैने उस आदमी के हाथ पकड़ लिये । वह घिघियाता हुआ बोला-"बाबूजी मुझे बचाइये " । मैने कहा—" चोर । " उसने कहा—" नहीं बाबूजी चोर नही, मै आपत्ति का मारा हूँ । इस स्टेशन से छिप कर कही दूर चला जाना चाहता हूँ "—

" झूँठ, तुम चोर हो । तुम्हारे पास टिकट है ? "

" टिकट नही ! पर उसकी भी एक कथा है, बाबूजी । आज

जो मुझे इस रूप मे जाना पड़ रहा है उसकी भी एक कहानी है, वरना मै कभी अनागरिक कार्य करने वाला आदमी नहीं। मै भली प्रकार जानता हूॅ कि नागरिकता उच्च नैतिक नियमो को स्वेच्छा से पालन करने का ही नाम है। मै इसलिये कभी उचित मार्ग को छोड़कर कुमार्ग से नही गया हूॅ, कभी रेल मे बिना टिकिट नहीं बैठा हूॅ, कभी हराम की कमाई नहीं खाई, कभी ईमानदारी के परिश्रम से मुख नही मोड़ा। फिर भी—

इतना कहते कहते वह रो उठा था। उसका हृदय गले तक भर आया था। उसकी आॅखो की गरम बूॅदे मेरे हाथ पर गिरीं तो मेरे हाथ शिथिल हो गये। उसकी बाते एक पढ़े लिखे सुसंस्कृत भावुक मनुष्य की सी थीं। वह समझदार था और उसके शब्द शब्द मे सच्चाई का बोझ प्रतीत हो रहा था। मैंने उसे अपनी गद्दी पर बिठाया। गाड़ी चलदी थी। उसने एक गहरी साॅस ली।

मुझे उसकी कथा मे वेदना प्रतीत हुई, उसने मेरा हृदय छू लिया था। उससे आगे की बात जानने के लिये प्रश्न पूछा। फिर तुम्हारे पास टिकिट क्यो नही ?

" मुझसे टिकिट छिना लिया गया। "

" कैसे ? "

" मै टिकिट खरीद कर सुबह की गाड़ी से इलाहाबाद जाने के लिये इस प्लेटफार्म पर आया। कपड़े मेरे फटे हुए थे जैसे अब हैं। आखिर जैसे कपड़े मेरे पास हैं ईमानदारी के परिश्रम

से कमाये हुए वैसे ही तो पहनूँगा। मेरा अपराध यह है कि बी० ए० होकर मैने कही नौकरी करके रिश्वत मारने और ऊँची तनख्वाह पाने का यत्न क्यो न किया—"

मै चौका—यह बी० ए० है! यह तो विचित्र आदमी है। चोर की भाँति घुसा, गरीब की भाँति रोया और अब बी० ए० बन रहा है। मुझे और मेरे अनुभव को पग पग पर धक्का दे रहा है। पर मै कुछ बोल न सका क्योकि वह कहे जा रहा था और उसकी कथा मे मुझे रुचि बढ़ सी रही थी—

"पर मै उस जीवन को घृणा नही करता। ऐसे वेष मे चोर समझा गया हूँ तो भी मुझे अपना अपमान अनुभव नही हुआ क्योकि सच्चाई को आँच नही होती। तो, जब मै प्लेटफार्म पर टहल रहा था तो वाच एण्ड वार्ड के आदमी की निगाह मेरे ऊपर पड़ी। उसे मुझ पर सन्देह हुआ कि मै उठाईगीरा हूँ। मै फटे कपड़े जो पहने था, और उठाईगीरा के लक्षण हैं फटे कपड़े! यह इन सिपाहियो का मनोविज्ञान है समझे बाबू जी! आप थोड़ा विचार कर देखिये अधिकाँश भारत ऐसे ही चीथड़ो मे जीवन व्यतीत कर रहा है और सिपाही उन सबको चोर समझ सकते है जबकि वे सचमुच साहूकार है। नही, साहूकारो को बनाने वाले हैं। वे मजदूर किसान अपने खून का पानी देकर ही तो इन सफेद पोशो को सीचते हैं, ये सफेदपोश क्या सचमुच लुटेरे नही?"

—उसका आक्षेप बहुत व्यापक हो गया था। उसके शब्दों

के घेरे मे मै भी तो आरहा था अतः मेरे मुँह की ओर थोड़ी देर ताकने के लिये वह रुक गया।

मैने कहा—" आप ठीक ही कह रहे हैं। हाँ! "

" हाँ, उसने शक मे मुझे गिरफ्तार कर लिया। मेरे पास टिकिट था। वह मैने उसे दिखाया तो कहा—अबे हमने तुझ जैसे हजारो चराये हैं। बोल टिकिट के पैसे कहाँ से चुराये ? "

" स्टेशनमास्टर उसी गाँव के रहने वाले थे जिसमें मै रह रहा हूँ। वे मुझे भली भाँति जानते थे किन्तु मेरे पक्के शत्रु हो रहे थे। वे मुझे फूटी आँखो जिन्दा नही देख सकते थे। वाच एण्ड वार्ड के सिपाही ने मुझे उनके इशारे पर ही पकड़ा था। उन्होने चट मुझे पुलिस मे दे दिया। पुलिस अपनी कारिस्तानी क्यो न दिखाती ? उसने मुझे पक्का बदमाश समझा और मुझे अपनी चतुराई में उन्होने ऐसी ऐसी जगहो पर घूमते—चोरी करते पाया था जिनको मैने स्वप्न मे भी न देखा था, न सुना था। उन्होने मुझे खूब ठोका, हुद्दे दिये। आप देखिये।"

उसका सारा शरीर सूज सा रहा था। मुझे भी उस पर दर्द हो आया। " ठोकने पीटने पर मै यह न बता सका कि पैसे कहाँ से चुराये। मैने अपना पता बताया तो विश्वास नही किया। हवालात मे बन्द कर दिया और शाम को मुझे उसमे से निकाल बाहर किया। और कहा—जा, तुझे छोड़े देते हैं, अब चोरी न करना। मेरा टिकिट मुझे न लौटाया गया। मुझे सुबह तक हर

हालत मे इलाहाबाद पहुँच जाना है। टिकिट के अलावा मेरे पास पैसे नही थे। पैसे होने पर भी स्टेशनमास्टर मुझे सही सलामत जाने देता इसमे शक था। अतः मुझे इस प्रकार से स्टेशनमास्टर से छिप कर इस गाड़ी मे आना पड़ा है। मै समझता हूँ मैने अनागरिक काम नही किया। मै इलाहाबाद तक जाने का किराया दे चुका हूँ। मुझे वहाँ तक जाने का अधिकार है। क्योकि उस अधिकार का पास मुझ से छीन लिया गया है इसीलिये मुझे यह अनैतिक, अनागरिक नही, मार्ग ग्रहण करना पड़ा है। ऐसी दशा में आप भी मुझे चोर ... "

मैने उससे क्षमा चाही। पर उसके बी० ए० होने पर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा था। मैने अब पूछा—"आप बी० ए० है और फिर ऐसी अवस्था मे?"

उसने कहा—"बाबू जी लम्बी कहानी है, आप सुनेगे? क्या करेगे सुनकर?

रहिमन, निज मन की विथा मन ही राखो गोय।
सुनि इठिलइहै लोग सब बाँटि न लैहै कोय॥"

मैने उससे बहुत आग्रह किया। तो उसने कहा—खैर, मार्ग कट जायगा। संक्षेप मे सुनाए देता हूँ।

उसने कहा—"मै... शहर के सेठ... का लड़का हूँ। दो साल हुए मैने बी० ए० पास किया है। मै जब बी० ए० मे था तो चार पाँच विद्यार्थियो ने मिलकर यह तय किया कि एक उत्तर-

भारतीय-यात्री दल बनाया जाय। पढ़ा बहुत था। अर्थशास्त्र और भारतीय राजनीति मे रुचि भी थी। देश की अवस्था का प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहते थे। बी० ए० की परीक्षा देकर हम लोग साईकिलो पर चल दिये। एक रात हमें एक गाँव मे ठहरना पड़ा। वहाँ की हालत देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ और उसने मेरा जीवन बदल दिया। जब हम पहुँचे तो बड़ा हँगामा हो रहा था। हमें खबर मिली कि आज भँगियो के चौधरी को गाँव के मुखिया ने जूतो से इतना पिटवाया है कि बेहोश होगया है। अब सारा कुआँ साफ कराया जा रहा है। उसकी मुडेरे भी नयी बनेगी। इन महतरो ने उसमे से पानी खींच लिया था। बात यह थी कि गाँव मे सभी कुँए ऊँची जाति वालो के थे। भंगी ग़रीब थे। वे पानी माँग कर भर ले जाते थे। कल चौधरी का परिवार किसी रिश्तेदारी से लौट कर रात को आया। शराब, माँस बहुत खा आया था, बेतरह प्यास सता रही थी। सबसे छोटा लड़का तो प्यास के मारे दम तोड़ रहा था। उसका तालू चटका जा रहा था और घड़े सूखे पड़े थे। अब क्या करे? किसी पड़ौसी के पास सबको सन्तुष्ट करने के लिये पानी कहाँ? चौधरी गिरता पड़ता कुँए की ओर गया पर इतनी रात को कोई कुँए पर क्यो होता? उसने कुछ एक से पानी माँगा भी पर फटकार ही खाई। "आया है रात मे पानी वाला, दिन में आना।" उन आराम से सोने वालो को उसके कष्ट का क्या पता था? चौधरी प्यास से विवश होरहा था। वह अपने प्राण बचाने के लिये अन्धा होगया और उसने

स्वयम् कुँए से खींचकर पानी पिया और सब घर वालो को पिलाया। वह जानता था इसका परिणाम क्या होना है ? भय से रात भर उसे नींद नही आई। पर वह और करता ही क्या ? भेद खुल गया और मुखिया ने इस भीषण अपराध मे उसे जूतो से सुजा दिया और कहा कि गॉव छोड़ कर चले जाओ।

"जब वह बेहोश घर को लेजाया जा रहा था तब हम वहाँ पहुँचे। हमारा हृदय करुणा और श्रद्धा से उसी भंगी की ओर आकर्षित हो गया। हमे उन गॉव वालो से इतनी घृणा हुई कि हम अपना वर्ण अवर्ण भूलकर भंगी के साथ हो लिये। हमारी पार्टी मे एक डॉक्टर महोदय भी थे। हम नवयुवक सभी कास्मापालिटन विचार के थे। विश्वबन्धुत्व के विचार हमारे अन्दर थे। हम करुणा प्रेरित वहाँ ठहर कर भंगी की सुश्रूषा करने लगे। सब भंगियो को आश्चर्य हुआ। उन्होने हमे बहुत रोका पर हम न माने हमने उन्हे आज्ञा दे देकर अपने मनोनुकूल घर साफ कराया। वहीं उनके मुहल्ले मे जो दुर्गन्धि से परिपूर्ण था, हम ठहर गये। हमारे हृदय पर चोट गहरी लगी थी। हम यह कभी नहीं सोच सके थे कि इन अछूतो का दासत्व इतनी हीन कोटि का है। हिन्दू और आर्य जाति के गौरव को हमने बड़े गर्व से सुना और समझा था, और अर्थशास्त्र की दृष्टि से शूद्रो को श्रम-विभाग का एक अंग माना था। छूताछूत को भी हम इतनी भयङ्करता से न देख सके थे क्योंकि वह तो किसी न किसी रूप में ऊँचे वर्णों मे भी विद्यमान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी अपने

अपने लिये ऊँचे और पवित्र बनते है। एक दूसरे का छुआ न खाना तो साधारण बात है। किन्तु आज की घटना ने तो हमारी आँखें खोलदी। ओह! इन गरीबो को साधारण नागरिक अधिकार भी नही। पानी, जीवन का सबसे आवश्यक अंग, वह भी ये स्वयम् नही खीच सकते। भोजन, दूसरा आवश्यक अंग, उसके लिये ये बड़ो की जूठन पर निर्भर! किसी जाति ने अपने दुश्मनो को भी ऐसी गर्हित दासत्व शृङ्खला मे न बाँधा होगा और यह आर्य जाति ने किया! कलङ्कित आर्य जाति! किसी के मानवी और नागरिक अधिकार छीनने की प्रमत्तता को क्या नाम दिया जाय? भारत का रहने वाला प्रत्येक भारतवासी है। उसकी प्रत्येक प्राकृतिक देन पर उसके सब पुत्रो का एक-सा अधिकार है। फिर जीवन की आवश्यकताओ को तो छीनना महापाप है और आज उसने कष्ट मे प्राण बचाने के लिये अपने उस जन्म-सिद्ध स्वाभाविक अधिकार का उपयोग किया तो यह सज़ा! उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।..... हम वहीं रहने लगे। लोगो ने हमे समझाया हम ऐसा अनर्थ न करे। हिन्दू धर्म रसातल को चला जायगा। ईश्वर नाराज़ हो जायगा। पर हम दृढ़ थे। उच्च वर्ण वालो ने आख़िर हमें भी पीटने का आयोजन किया किन्तु इस बार महतर सब मिल गये। हमारे पहुँच जाने से उनमें एका हो गया था। हमने वहाँ पाठशाला खोलदी। महतरों के लड़के-लड़की पढ़ने लगे। किन्तु गाँव के ऊँचे लोगो को यह सब बुरा लग रहा था। उन्होने महतरो को पानी देना बन्द कर दिया। रोटी देना बन्द कर दिया। हमने देखा यह युद्ध बिना ठने न रहेगा। हमने सलाह

दी कि पास पड़ौस के सभी महतरो को अपने गाँव में बुला लो। पास पड़ौस के गाँवो से आ आकर सभी महतर उस गाँव मे बसने लगे। इधर हमारी पाठशाला का काम जोरो से चल रहा था। महतरो से कह दिया गया कि यदि ऊँचे लोग आपको पानी नहीं देना चाहते तो कुँआ खोदो। उन्होने कुँआ खोद लिया। पानी का कष्ट तो दूर हो गया। सब ने मिलकर बहुत सा रुपया इकट्ठा कर, एक सहकारी बैंक चलाई और ज़मीन मोल ली। महतर किसनई करने लगे। उन्हे और व्यवसाय भी सिखा दिये। उनकी एक पञ्चायत बनादी गई। उन सबने शराब और मॉस खाना छोड़ देने की प्रतिज्ञा की। गॉव वालो ने बहुत हाथ पैर पीटे, कई वारदाते हुई। इन्ही ऊँचे लोगो मे से एक यह स्टेशनमास्टर साहब थे। गॉव भर मे यही एक पढ़े लिखे थे। इन्हे हमने समझाया कि आप इतने कठोर न बनिये। इनको सिविल लिवर्टीज़, इनके जन्म सिद्ध अधिकार दीजिए। इन्हे योग्य नागरिक बनाने में मदद दीजिए। इन्हे सभ्य और सुशिक्षित बनाइये। पर आपको भय था कि फिर ये हमारे सर पर चढ़ेंगे, नीच जाति; फिर इनका काम हमे करना पड़ेगा और जब महतरो ने अपना काम बन्द कर खेत करना तथा अन्य चीज़े बनाना शुरू कर दिया तो अब ये क्या करे? अब तो इनका भय सचमुच इनके सामने आगया। स्वयम् महतरो का काम करना पड़ा। आलस्य से उतना न कर सके तो गॉव गन्दगी से भिनभिन करने लगा। ये लोग और उनमे सबसे अधिक ये स्टेशनमास्टर साहब हम पर दाँत मिसमिसाते थे। आज उसी का दण्ड भुगता है। देह सूज रही है।

" आखिर कल ऊँचे लोग झुके हैं। उन्होने कहा कि नहा धोकर यदि महतर भी आवें तो पानी भर सकेंगे। वे पढ़ लिख सकेंगे, पञ्चायत में बराबर बैठ सकेंगे। उनको सब नागरिक अधिकार दिये गये। इस समझौते से स्टेशनमास्टर साहब की झुँझलाहट और भी बढ़ गई है····· "

मै अवाक् था। मै भी छूआछूत का भाव अच्छा नही समझता। मै चमारो तक जाकर रुक जाता था, महतरो के प्रति मुझे सॉस्कारिक घृणा थी। इस शताब्दी मे इतनी जल्दी, केवल दो साल मे आप महतरो को अधिकार दिला सकेंगे, छूआछूत दूर कर सकेंगे······।

मैने कहा—" झूठ, बड़े गप्पी हो।"

स्टेशन आगया था। प्रातःकाल की लालिमा से इलाहाबाद का स्टेशन रंजित हो रहा था। मैने देखा खद्दर धारियो की अपार भीड़ स्टेशन पर एकत्र है। सभी के हाथ मे मालाऐ हैं। मै बड़ा उत्सुक था, आज क्या इस ट्रेन से महात्मा गॉधी या जवाहर या कोई बड़ा देश-भक्त नेता आया है क्या? देखूँ—गाड़ी ठहरी ही थी। उस युवक ने कहा—

" आप झूँठ समझते है, झूँठ ही समझिए " और वह खिड़की खोलकर उतरा ही था कि भीड़ उसी पर टूट पड़ी—

वह युवक मालाओ से लद गया।

अरे! मेरा चोर तो नेता बन गया।

१०

बिखरा स्वप्न

× × ×

रात्रि—१०.४०

इन्दिरा रानी,

यद्यपि अभी तक मै अपनी वकालत के कागजो के देखने मै और मुवक्किलो के समझाने-बुझाने मै लगा हुआ था, पर हर क्षण तुम्हारी सुनहरी मुलाक़ात का सजीव पर्दा मानो इन सब बातो के पीछे पड़ा हुआ इस नाटक को रंगीन बनाए हुए था। तुम मेरे रोम रोम मे रस बन कर रम रही थी और जैसे वह झगड़ा समाप्त हुआ कि तुम स्मृति मे पीछे न रहकर आगे आगई।

रेल के सफर मे हम लोग केवल एक दिन और एक रात साथ रहे, फिर भी इतने अवकाश मे मुझे ऐसा लगने लगा है कि हम आपस मे एक दूसरे से अनन्य और अनन्तकाल से परिचित हैं। तुम्हारी बातो से मैंने जान लिया कि तुम्हारे माता-पिता अथवा अन्य कोई कुटुम्बी तुम्हारी देख भाल करने वाला या तुम पर अनुशासन करने वाला नही। तुम अपना मत स्वयम् बनाने वाली हो। मेरे भी माता-पिता-कुटुम्ब नही, मेरा यदि कोई कुटुम्ब है भी तो अनाथालय है। जिसमे मै पैदा होने के बाद से ही पाला गया हूँ। तुम तो शायद यह जानती भी होगी कि तुम्हारे पिता कौन थे, माता कौन थी ? पर मै कुछ भी नही जानता। न मेरे लिये कोई स्थान पितृ-स्थान है, न मातृ-स्थान है। पिता और माता दोनो ओर से ही मुक्त-स्वच्छन्द मैं केवल भारत का होकर जन्मा हूँ। समाज ने मुझे पाला है, सारा समाज ही मेरा माता-पिता तथा कुटुम्ब है, इसलिये मै भी पूर्ण स्वतन्त्र हूँ। अनाथालय ने पाल-पोस कर मुझे कुछ कारबार करने योग्य बनाया। अपने परिश्रम की कमाई से मै स्वयम् एम. ए., एल-एल. बी. करके वकील हुआ हूँ। जगत मे बिलकुल अकेला, कुछ नौकरो पर आश्रित रहने वाला तथा समाज की करुणा-प्रेरित प्रेम-सहानुभूति से संवलित। मुझे स्वाभाविक प्रेम कहाँ मिला है ? दया मिली और उससे मै उकता गया हूँ। मेरा हृदय किसी अभाव मे विकल हो उठता है, और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, धृष्टता क्षमा—कि तुम मेरा अभाव शायद दूर कर सकती हो। कुछ घण्टो मे तुमसे जो प्रेम मुझे प्राप्त हुआ

उससे मै विभोर हो उठता हूँ। क्या तुम······ क्या मै साहस करूं कि ···· नही, क्या मै इतना सौभाग्यशाली हो सकता हूँ कि आपका चिर प्रेम पा सकूँ। मै फिर क्षमा चाहता हुआ यह कहना चाहता हूँ कि मै यह कहने का साहस आपको अपमानित करने के लिये नहीं कर रहा और मै केवल उच्छृङ्खल प्रेम-सम्बन्ध मे नहीं पडना चाहता । मै तो पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण गम्भीर दाम्पत्य प्रेम की भिक्षा चाहता हूँ। मैने तुममे वे गुण पाये है जो मुझे बल-शक्ति प्रदान करेंगे जो मेरा अभाव दूर कर सकेंगे। कुछ काल की मुलाक़ात के बाद ही ऐसा पत्र पाकर यह न समझना कि उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ रहा हूँ। तुमको पूर्ण अधिकार है कि निर्दय होकर मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दो, यदि अनुचित समझो या दोष पाओ। मै धर्म, जाति और फिरके सभी से ऊपर नागरिक विचार को महत्व देता हूँ। हमारा भारत अब धार्मिक राष्ट्र नही रहा। अब वह राजनैतिक राष्ट्र है जिसमे विभिन्न-वर्ग-समुदाय, धर्म तथा जाति के लोग राष्ट्रीय दृष्टि से एक हैं। अब हमको धर्म से पहले राष्ट्रीय समस्याऐ सुलझानी है। उसके लिए मै विवाह मे किसी अस्वाभाविक बन्धन पसन्द नही करता। जिस संगी मे भी हम ऐसे गुण पा सकते है कि उसके फलस्वरूप उच्च नागरिक पैदा हो, बलशाली और भारत को अपना समझने वाले; तो उस संगी के लिये जाति-धर्म की अड़चन न पड़नी चाहिए। हमारी जाति भारतीय होनी चाहिए। धर्म हरएक का अलग अलग भी हो सकता है यदि वह नागरिक धर्म के विरुद्ध न हो। और

मै तुममे वह सब गुण पाता हूँ और यदि तुम कहने दो तो उस सबके साथ मै तुम्हे प्रेम भी करने लगा हूँ।

इस पत्र से तुम समझ सकती हो कि मुझे प्रेम का आवेश नही, केवल विचार है।

उत्तराकांक्षी—

विधुशेखर।

× × ×

रात्रि—११ . ३०

इन्दिरा रानी,

......पढ़ कर भी सन्तोष न हुआ। तुम्हारे पत्र के अक्षरों में प्रेम था, व्यथा उस से भी अधिक थी। ऐसी क्या बात है? और जब तुमने मेरे द्वारा "अपने हृदय मे प्रेम की अलौकिक निर्दोष ज्योति प्रज्ज्वलित होती देखी है" तो उस पावन बन्धन मे बँधना क्यो अस्वीकार करती हो? केवल प्रेम होना भर, भले ही वह उज्ज्वल और पवित्र हो मानव को ठीक मार्ग पर रखने के लिये पर्याप्त नही। मै प्रेम को आध्यात्मिक वस्तु समझता हूँ अवश्य, और वह जैसे भक्त का भगवान मे हो सकता है, वैसे ही उतना ही उज्ज्वल और निष्कलुष दो आत्माओ मे भी हो सकता है। पर केवल ऐसे प्रेम को ही प्रश्रय देना अनेकों झंझटो का कारण हो सकता है। उससे नागरिक जीवन मे

भीषण कठिनाइयाँ तथा समस्याऐ भी उपस्थित हो सकती है। मैंने पिछली बार लिखा था कि मै नागरिकता को प्राधान्य देता हूँ। और नागरिक जीवन मे अपने कर्तव्य और अधिकारो का प्रत्येक पहलू जितनी दूर तक हो सके सुरक्षित रहना चाहिये। बिना विवाह के हमारा तुम्हारा आध्यात्मिक पवित्र प्रेम भी अनैतिक समझा जायगा। और जहाँ अर्थ और सम्पत्ति मे पारस्परिक अनागरिक बाते हो सकती है, वहाँ अन्य नागरिको को तुम्हारे अविवाहित होने के भ्रम मे बहुत कुछ मानसिक और शारीरिक क्लेश हो सकते है। फिर जब हम तुम दोनो एक दूसरे को चाहते है, तो फिर कोई बाधा क्यो रहे? मै केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध नही चाहता, पूर्ण सहयोग चाहता हूँ। हम दोनो मिलकर ही पुष्ट नागरिक और सच्चे नागरिक संसार मे बना सकेंगे। क्योकि हमारे प्रेम मे केवल धार्मिक भावना अथवा सामाजिक-नीति नही वरन् नागरिक-कर्तव्य और अधिकार, और उसके योग्य बनने बनाने की समस्या है। जिससे तुम भी अपने पत्र मे सहमति दिखा चुकी हो—

उत्तर की आशा कर रहा हूँ,

विधुशेखर।

× × ×

इन्दिरा रानी,

...मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम कुछ छिपा रही हो।

इतनी तीव्र विकलता होते हुए भी तुम्हे कोई संकोच घेरे हुए है। ऐसी क्या बात है ? तुम्हे मेरी शपथ है, वह स्पष्ट कर दो—

विधुशेखर।

× × ×

मेरी रानी,

तुम्हारा दुःख-दग्ध पत्र मिला। तुमने मुझे भी साधारण समाज की प्रवृति से जॉच कर भय किया और वास्तविक बात बताने मे इतना संकोच किया। तुम्हारा खयाल है मै तुम्हे घृणा करने लगूँगा। तुम्हे नीच समझूँगा और तुम्हे जो मेरा प्रेम पाने का अब तक एक आन्तरिक सुख मिल रहा है उससे वञ्चित कर दूंगा। पर मेरा विश्वास करो, तुम्हारा पत्र पढ़ कर और तुम्हारी वास्तविक अवस्था जान कर तो मै और भी अपने विचार मे दृढ़ हो गया हूँ। एक तो इस लिये कि मैने तुम मे जिस प्रेम का दर्शन किया है वह पवित्र और पावन है। यही तो मैं प्रेम के आध्यात्मिक अस्तित्व पर विश्वास करता हूँ। तुममे अपने जीवन के प्रति जो पश्चात्ताप का भाव उदय हुआ है वह उसी प्रेम का शुद्ध करने वाला प्रायश्चित्त है। इसलिये मुझे तुम्हारे प्रेम मे उन सब सती कुमारियो से अधिक विश्वास है जो बिना प्रेम का ठीक परिचय पाये किसी और चीज़ को ही प्रेम कह उसके पीछे दौड़ती हैं। फिर दूसरा एक कारण सामाजिक है। जिस समाज के रोग ने अथवा अत्याचार ने मुझे अपने माता-पिताओ से वञ्चित कर

अनाथ बनाया है, उनके रहते उनका अस्तित्व, नाम, कुल सभी को मेरे लिये मिटा दिया है। मै समझता हूँ और तुम्हारे कथन से दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ, उसी अत्याचार ने तुम्हे वेश्या बनाया है और तुमसी अनेको भारत की सुपुत्रियाँ समाज के अनाचार की शिकार होकर उसी समाज को जर्जरित करने मे लगी हुई है। स्वयं भी अपावन पीड़ापूर्ण जीवन बिता रही है। जहाँ किसी से सुसम्बद्ध हो सम्मानित तथा प्रतिष्ठित बनकर वे नागरिक जीवन की शोभा और श्री बढ़ाती वहाँ वे उस नागरिक जीवन को दूपित कर रही है। फिर इस बात का उत्तरदायित्व कि मै अनाथ हूँ और तुम वेश्या, मेरे और तुम्हारे ऊपर नही, मै चाहता हूँ कि तुम इस सामाजिक अनाचार मे अधिक न पिसो। मै तुम्हारी ही नही, तुम्हारी जाति भर की स्त्रियो की मुक्ति का उद्योग करूंगा। क्या तुम कुछ सहायता दोगी? ठहरो, जब तक वेश्याऐ भी सुनागरिकाऐ नहीं बनेगी, मै अपने विवाह को स्थगित रक्खूँगा। मै आज से ही आन्दोलन आरम्भ करता हूँ। तुम्हारी सहायता का भरोसा है।

विधुशेखर।

× × ×

मेरी रानी,

मुझे तो आशा नहीं थी कि तुम इतना बड़ा काम इतनी शीघ्रता पूर्वक करा दोगी। मै समझता था कि विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आदत पड़ जाने के कारण शायद इस ज़िन्दगी

का मोह सभी इतनी आसानी से न छोड़ सकेंगी। सभी के हृदय मे कोई तुम्हारी सी आग थोड़े ही लगी थी, है न! पर तुम्हारे भेजे सौ प्रतिज्ञा-पत्रो को देख कर तो मै अवाक् रह गया। और उसी क्षण मै ठीक-ठीक अनुभव कर सका कि विलास की कीचड़ मे, दूसरो के काम-कन्दुक बने रहने के जीवन मे कभी किसी क्षण भी कोई सुख का स्पर्श नही हो सकता। सभी पत्रो ने हमारे प्रश्न को गम्भीरतापूर्वक उठा लिया है। तुम देखती ही होगी आज कल का मुख्य विषय हमारा यही वेश्या-उद्धारक आन्दोलन है। मेरी लेखनी मे इतना बल कहाँ से आगया है, सब तुम्हारी दिव्य शक्ति है।

अनेको वेश्याओ ने भी बिना हम लोगो की प्रेरणा के अपना हाल प्रकाशित किया है और यह इच्छा प्रकट की है कि यदि उन के निर्वाह के लिये कुछ प्रबन्ध हो जाय तो वे इस जीवन को त्याग दे।

एक बात सुनकर तुम्हें प्रसन्नता होगी कि मैनें जो वेश्याओ की अवस्था और वेश्या बनने के कारणो की जॉच के लिये कमेटी बनाने का परामर्श भेजा था वह सरकार ने स्वीकार कर लिया है। कमेटी शीघ्र ही बन जायगी। हम लोग तब तक निजी रूप मे वेश्या-उद्धारक कार्य को संचालित रक्खेगे।

कुछ लोगो का कहना है कि वेश्याऐ समाज के लिये आवश्यक है। मनुष्य की जो प्रवृत्ति आज वेश्याओ की ओर आकृष्ट

होती है, वह वेश्याएें न रहने पर असन्तुष्ट हुई अच्छे भले नागरिको के घरो मे अशान्ति और गन्दगी फैलाने का कारण बन सकती है। पर इसके लिये दुकाने क्यो खोली जायँ? रूप की दुकाने खोलने से जहाँ स्त्री के स्त्रीत्व का घोर अपमान है तथा जहाँ उसे अपने पैसो के लिये हर प्रकार से बुरे भले ग्राहक को सन्तुष्ट करने का अत्याचार अपने ऊपर करना पड़ता है, वहाँ दूसरे अपरिचित और शुद्ध प्रकृति वालो को भी रूप की आग पतिंगा बना सकती है। इन कामोद्दीपन के अड्डों पर उस प्रवृति को सन्तुष्ट नही किया जाता, वरन् भड़काया और बढ़ाया जाता है। जो स्त्रियाँ देवियाँ बनकर अपने सम्बन्धी पुरुपो मे कर्तव्य-परायणता और नागरिक योग्यता की स्फूर्ति भरतीं; वे यहाँ अपने पैसो और विलास के लिये उन्हे पाप न कहो न सही, पर अनागरिक काम करने के लिये फुसलाती है, भड़काती है और विवश कर देती है। मानवीय कमजोरियो का व्यवसाय? ओह! घोर राक्षसी विचार है। खैर, तो जितनी भी प्रतिज्ञाएे भरवाई जा सकें भरवाओ। सम्भवतः, जिस प्रकार के वातावरण मे ये लोग अभी तक पली है, उसके कारण उन्हे नवयुवक एकदम न अपना सकें, इस लिये मै पहले एक स्त्री-उद्योग-मण्डल स्थापित करूंगा। हमारे प्रान्त के कई राजाओ ने इस उद्योग-मण्डल के लिये वहुत सा दान देना निश्चय कर लिया है। है न आश्चर्य—राजा लोगो का दान! पर हमे तो अपना उद्देश्य सफल करना है। इस रुपये से मण्डल की स्थापना की जायगी। और वे सभी वेश्याएे जो अपने

लिये पति नही पा सकेगी इस उद्योग-मण्डल मे रहकर कुछ उद्योग करेगी। कपड़े बुनना, सीना, काढ़ना, रँगरेज़ी, अचार मुरब्बो का काम, पंखे बनाना, टोकरियाँ बनाना, खिलौने आदि बनाना; इन कामो के साथ संगीत-शिक्षणालय भी खोल दिया जायगा। भारतीय नृत्य-कला का संस्कृत रूप इनको सिखाया जायगा। ये नृत्य और संगीत की शिक्षकाऐ सहज ही बनाई जा सकती हैं। इन्हे अंग्रेजी हिन्दी का टाइप करना सिखाया जायगा। इसकी माँग होगी और स्त्रियाँ इस काम को सहज ही कर सकेगी। कुछ इनमे से अवश्य ही अच्छी धाय बन सकेगी। बालको की देख रेख और शिक्षा का काम भी स्त्रियाँ ही ठीक कर सकती है। रोगी-सेवा के योग्य भी इनको बनाया जायगा। इस प्रकार जितना अधिक से अधिक उपयोगी ये बन सकेगी बनाया जायगा। जब जिसको योग्य पति मिल जाय वह शादी कर सकेगी।

बस, मै वह दिन देख रहा हूँ जब हम और तुम······।

विधुशेखर।

× × ×

रानी,

रिपोर्ट निकल गई है। उसमे कोई नई बात नहीं। हम सभी मान गये है कि एक भूल में फँस कर समाज के भय से अनेको स्त्रियाँ बाजार मे जा बैठी हैं। अनेको अनाथ होकर दरदर पेट के

कारण ठोकर खाकर इस पेशे मे आयी है। अनेको को पुरानी वेश्याओ ने अपने बुढ़ापे का सहारा बनाने के लिये भगा मँगाया है। अनेको इस लिये इस वृत्ति मे आई है कि उनकी स्वतन्त्र प्रकृति के लिये समाज मे आदर और स्थान नही मिला, उनको कोई नागरिक अधिकार नही दिया गया कि वे अपना महत्व पुरुषो की काम-कन्दुक होने और घर की नौकरानी होने से कुछ आगे और अधिक समझ सकती। पर्दे की कठोर सामाजिक लौह-शृङ्खला मे बन्द उनको इन यौन बातो मे कुत्सित आनन्द ही एक आनन्द रह जाता है, और इसका भी जब वे अवसर पाती है सब प्रकार उपयोग करना चाहती है। यदि उन्हे भी पुरुष के समान नागरिक अधिकार मिल जायॅ तो वे अच्छे स्थान पावे, स्वावलम्बिनी बने और अपनी प्रतिष्ठा समझे। गवर्नमेट ऑफ इण्डिया एक्ट् १९३५ से उनको जो नगण्य अधिकार मिले है वे तुच्छ है, और फिर हमारा समाज उतने अधिकारो का भी उपयोग उन्हे नही करने देता । अशिक्षित भोली रहने के कारण भी वे भुलावे मे शीघ्र ही आजाती है और अपने मार्ग से च्युत होकर अनागरिक व्यवसायो मे लग जाती है।

हाँ रिपोर्ट से सरकार का ध्यान हमारे आन्दोलन की ओर गया है। उसने हमे १००) मासिक सहायता देने का वचन दिया है।

तुम जिस लगन से मण्डल का भवन बनवाने मे लगी हुई हो वह मेरे लिये ईर्ष्या की बात है। संभवत. दो हफ्तो मे वह तय्यार हो जायगा।

बोलो, विवाह के अवसर पर क्या क्या तैयारियाँ चाहती हो? मै चाहता हूँ जिस दिन मण्डल-भवन का प्रवेशोत्सव-संस्कार हो, वही, उसी रात्रि को हमारी चिर-अभिलाषा भी पूर्ण हो। मण्डल के प्रवेश की तिथि भी निश्चय करली गई है। वसन्त-पञ्चमी! कहो पसन्द है न?

विधुशेखर।

× × ×

रानी, रानी,

यह तुम क्या कर रही हो? क्या कल जो "सैनिक" में प्रकाशित हुआ है वह ठीक है? क्या तुम मुझे बिलकुल भूल गयी थी? क्या तुमने मेरे जीवन को मिट्टी मे मिलाना निश्चय कर लिया है? ओफ, कई दिन तक बिलकुल अलग अलग बिना बोले चाले रह कर क्या यही सोच रही थी? क्या मुझसे कोई अपराध हो गया जो इस प्रकार सार्वजनिक भाषण बिना मुझे सूचना दिये और परामर्श किये दे डाला—ओफ! इसे पढ़कर मेरे पैरो तले की मिट्टी निकल गई है, मेरा स्वर्ण-स्वप्न बिखर गया है, बताओ क्या यह सच है? मै अख़बार की कटिंग दे रहा हूँ। एक बार फिर विचार करो रानी! और मेरी नाव को डूबने से बचाओ।

विधुशेखर।

× × ×

कटिंग

एक महिमामयी वेश्या का अपूर्व निश्चय

इन्दिरा रानी का ओजपूर्ण भाषण

कल सायंकाल को ऐसप्लेनेड रोड के पार्क मे वेश्याओ और स्त्रियो की पहली सभा हुई। आज से तीन दिन बाद वसन्त पञ्चमी है, और उस दिन स्त्री-उद्योग-मण्डल के भवन का उद्घाटन संस्कार होगा। इस संस्कार से पूर्व, कुछ पूर्व ही श्री० इन्दिरा रानी का भाषण एक प्रोत्साहन का संदेश था। उन्होने देदीप्यमान मुख मण्डल का प्रभाव डालते हुए कहा— वहिनो और भाइयो ! आज हमारा, जिनको वेश्या कहा जाता है उन्ही का नया, जीवन नही हो रहा, सारी भारतीय स्त्री जाति को नया प्राण मिलने वाला है और उसका प्रभाव भारत के सारे नागरिक जीवन पर पड़ना अवश्यम्भावी है। आज जिस यज्ञ की प्रथम आहुति एक स्त्री-उद्योग-मण्डल की स्थापना से हुई है उसकी सफलता से देश भर मे ऐसे उपयोगी मण्डल वनेगे। ये मण्डल जहाँ पतितो को पतित होने से रोकेगे उन्हे स्वावलम्ब का दिव्य आनन्द चखायेगे, वहाँ स्त्रियो के नागरिक अधिकारो के लिये, बालको को हृष्ट-पुष्ट वनाने के लिए, औद्योगिक उन्नति का आदर्श उपस्थित करने के लिये और सब से अधिक उच्छृङ्खल नागरिको के अनुचित व्यवहारो को रोकने के लिए एक बडी शक्तिशाली सेना प्रदान करेगे। आप मे से जो वहिने भी चाहेगी अपने योग्य पति पाकर सुखी

जीवन व्यतीत करेगी, तब तक यह मण्डल आपको आश्रय देगा। पर, मैंने तो कुछ और ही निश्चय किया है। जहाँ से मुझे इस पवित्र मार्ग का दर्शन हुआ, जहाँ से मैंने प्रेम का सच्चा पवित्र स्रोत पाया, वहाँ उसको उससे भी अधिक उज्ज्वल बनाने के लिये मैंने निश्चय किया है कि मै आजीवन इस मण्डल की सेवा करूंगी। मेरा जीवन बस इसी के लिए है। इतनी भरी जनता के समक्ष मेरा अब दृढ़ निश्चय है कि मै पवित्र जीवन व्यतीत करती हुई नागरिक उन्नति मे भाग लूँगी और विवाह न करूंगी। आशा है आप लोग मुझे आशीर्वाद देगी कि मै अपने इस निश्चय का दृढ़ता के साथ पालन कर सकूँ

विधुशेखर।

× × ×

प्रिय मित्र श्याम,

तुमने मेरे दुःख में सहानुभूति दिखाई है, धन्यवाद! तुमने यह भी चाहा है कि मै उस देवी का परिचय तुम्हे दूं जिसने मुझे वेश्या उद्धार के लिये प्रोत्साहित किया। वह और कोई नहीं स्त्री-उद्योग-मण्डल की व्यवस्थापिका इन्दिरा रानी है। उनका पत्र मै तुम्हे देखने के लिये भेज रहा हूँ। उसी से तुम शक्ति का अनुमान कर सकोगे। ओह, मेरी हृदय-देवी मेरे हृदय मे न बैठ कर मेरे उद्योग-मन्दिर मे जा बैठी। पत्र साथ ही लगा है। मेरे लिये संसार मे क्या रह गया? बताओ। बस शुद्ध कर्त्तव्य भार। वह तो

ढोना ही पड़ेगा। केवल उसमे एक बात अवश्य रस की होगी कि इन्दिरा रानी की प्रसन्नता उसी से होगी।

तुम्हारा

विधुशेखर।

पत्र

प्रियतम,

आप मेरे सत्य ही प्रियतम है। उस दिन रेल मे मिलने से आज तक मै सदा आपको अपने पास पाती रही हूँ। उस प्रेम की पवित्र धारा मे डूब डूब कर मैने अनुभव किया है कि मै पवित्र होती चली गई हूँ। मेरा हृदय का कलुष शुद्ध होता गया है। उस दिन उस भवन के अन्तिम निर्माण को मै बड़ी उत्सुकता से देख रही थी, क्योकि मै भी वसन्त पञ्चमी को अपने जीवन को नये सूत्र मे आबद्ध करने और नये जीवन के उद्धार के लिये विकल थी, और जिस क्षण उसकी सम्पूर्ण समाप्ति हुई उसी क्षण जैसे मै एक और प्रकाश-लोक मे पहुँच गई। मुझे लगा कि जिस पवित्र-अग्नि और तपस्या का फल यह भवन दीख रहा है उसकी रक्षा तो सब कुछ देकर भी करनी होगी। और यदि हम दोनो विवाह सूत्र मे आवद्ध हो जायँगे तो हमारा सारा उद्योग बाहर से एक स्वार्थ की छाया से मलिन हो जायगा और फिर क्या इस भवन की पवित्रता मे किसी को विश्वास हो सकेगा? आपका प्रेम मुझे प्रज्ज्वलित शिखा रहे। वह मलिन न हो सके इस लिये मैने निश्चय

किया कि मैं विवाह न करूंगी। प्रिय, यह अन्तर प्रेरणा का फल है। इसे तुम भी स्वीकार करो। मै अपना जीवन स्त्रियो की नागरिक-शिक्षा के लिये समर्पण कर रही हूँ। मुझे लगता है जैसे आपके प्रेम का सार मेरे हृदय में समा गया है, और आप और भी घनिष्ठ रूप से मेरे रोम रोम मे समा गये हैं। आपके प्रेम की मै पूजा कर सकूँ।

इन्दिरा।*

---

* ये सभी पत्र हमें विधुशेखर जी के घनिष्ठ मित्र श्री० श्याम मनोहर जी एम० बी०, बी० एस० से मिले। हम नहीं कह सकते उन्होंने इन्दिरा रानी से ये पत्र कैसे प्राप्त किए? हमारे मतलब के थे हमने प्रकाशित कर दिए हैं।

११

स्वतन्त्रता का अर्थ

[एक मैदान। जहां तहां तिरंगे झंडे लगे दीख रहे हैं। बड़े उत्साह से भरा हुआ एक विद्यार्थियों का दल आता है। उसके हाथों में तिरंगे झण्डे हैं। मुख उत्साह से लाल हो रहे हैं। कुछ नंगे सिर हैं। कुछ पर गांधी टोपियां हैं, मिले जुले कपड़े पहने हैं। वह दल गाता हुआ निकला जाता है। वह गाता जाता है—

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा॥

इस झण्डे के नीचे निर्भय,
ले स्वराज्य यह अविचल निश्चय,

बोलें भारत माता की जय,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥

दल चला जाता है। गाने की ध्वनि मन्द से मन्दतर होती चली जाती है। अभी बिलकुल विलीन नहीं हो पाई।

भारत कुमार का थोड़ी मुग्धावस्था में प्रवेश]

भारत—कैसे भावों से हृदय आलोड़ित हो रहा है। स्वतन्त्रता का मन्त्र जादू से भरा हुआ है।

और वह दल जो अभी झण्डों को ऊँचा किये हुए दर्प का भरा हुआ गाना गाता चला जा रहा है, उसमें कितनी स्वतन्त्रता की कामना है! उसके हृदय में कितनी आशा है! निश्चय ही अब स्वतन्त्रता दूर नहीं। ... यह कौन? अहा गुरुवर!

[एक वृद्ध पुरुष का दूसरी ओर से प्रवेश]

वृद्ध—सन्ध्या है, यह तो सन्ध्या है। अन्धकार और प्रकाश का मेल है यहाँ। प्रातःकालीन सन्ध्या में सूर्य के प्रकाश की अस्फुट किरणों के स्पर्श से गर्तों में भरा अन्धकार कैसे घना हो जाता है? भगवन् हमारे देश का कल्याण हो।

भारत—गुरुवर आज का दिन कैसा दिव्य है। स्वतन्त्रता की सुनहरी उषा की झाँकी कितनी मादक है! गुरुदेव! गुरुदेव! आप मौन क्यों हैं?

वृद्ध—भारत ! यह सन्ध्या है। संघर्ष मात्र सन्ध्या है, और सन्ध्या को देखकर कौन कह सकता है कि अब दिन निकलेगा या रात्रि होगी ? सन्ध्या के बाद रात्रि भी हो सकती है। स्वतन्त्रता की सुनहरी उषा क्या तुम्हे इस भीड मे दिखाई पड़ गई, या उनके गाने मे या उनके जोर के नारो मे ! देखो, फिर देखो, यह (नेपथ्य में झण्डा गायन की ध्वनि कुछ प्रबलतर हो रही है) एक और स्वतन्त्रता का पागल दल चला आ रहा है। जरा उसे गौर से देखो। एक ओर हो जाओ।

[दोनों स्टेज से हट जाते हैं। एक मनुष्यों का समूह एक एक करके निकलता है। कुछ खद्दर पहने हैं, कुछ गांधी टोपी लगाये हैं, कुछ नगे पांव, कुछ चप्पलें पहने, कुछ जूते पहने, कुछ देशी पहने, कुछ खद्दर धारे। वही गाना गाया जा रहा है।

" झण्डा ऊँचा रहे हमारा "

जय बोल रहे हैं ' भारतमाता की जय '। लटे, दुबले, मोटे, पतले सभी प्रकार के आदमी हैं। कुछ सिगरेट सुलगा रहे हैं, कुछ बीडी, कुछ गाते जा रहे हैं, कुछ हँसते। कुछ बातें करते जा रहे हैं। वृद्ध दो चार हैं। सबसे अधिक सख्या विद्यार्थियों की है। साथ-साथ मूंगफली बेचने वाले, रेवड़ी वाले और चाट वाले भी चल रहे हैं। और कोई-कोई इनसे खरीद भी रहे हैं। दल से एक गज दो गज के फासले पर कुछ साहबी टाठ वाले लोग जा रहे हैं। मानो वे दर्शक है और उन्हें उस दल से कोई काम नहीं।]

वृद्ध—[स्टेज पर आकर] आओ भारत! देखा तुमने? इस दल मे क्या ऐसी बात देखी जिससे इनमे कोई गहरी बात दिखाई पड़े? तुमने इन लोगो की पोशाके देखी?

भारत—जी! सब पोशाके भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं।

वृद्ध—तुमने उनके कपड़ो की जाति पहचानी?

भारत—अधिकांश मिलके, विदेशी भी, खद्दर बहुत कम।

वृद्ध—और उनके चेहरे का उत्साह?

भारत—कुछ तो बहुत गला फाड़ रहे थे, कुछ मुँह लटका थे, कुछ धीरे धीरे बोलते थे। कुछ को जैसे लज्जा लग रही हो।

वृद्ध—मूँगफली, पान-बीड़ी?

भारत—उनसे तो एक मेला लगता था। बस!

वृद्ध—और पीछे जाने वाला जो साहबी दल था वह?

भारत—वह तो ऐसा लगता था जैसे उसे भारत और उसकी स्वतन्त्रता से कोई मतलब ही नही। वे जैसे विरक्त महात्मा हो, भारत स्वतन्त्र हो जाय अच्छा, न हो जाय तो न सही।

वृद्ध—वृद्ध कितने देखे?

भारत—उन्हे तो ऐसी बाते बच्चों का खेल लगती हैं।

वृद्ध—फिर किस बात मे तुमने एकता देखी और इस प्रकार

के लोगो से तुम समझते हो स्वतन्त्रता मिलेगी तो कायम रहेगी। देखो, कुछ और दृश्य देखो—हट जाओ एक तरफ।

[दोनों स्टेज से हट जाते हैं। परदा फटता है। किला दिखाई पड़ता है। उस पर लीडन का कार्ड लगा हुआ है। लीडन हालैण्ड का एक नगर है। स्पेन के शासक की ओर से नियुक्त गवर्नर हालैण्ड निवासियों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिये लीडन को घेरे पड़ा है, स्पेन का भेजा हुआ गवर्नर दीख रहा है]

ऐल्वा—ह: ह: ह:, इन डचो की हेकडी तो देखो, परेशान कर रखा है। पर इससे स्पेन के दृढ़ निश्चय पर कोई असर नही पड़ सकता, वह इन उद्दण्डो को पीस डालेगा, इन पर से अपना अधिकार नही हटने देगा, इस लीडन के फतह हो जाने पर सब फतह है। चारो ओर से घिरा हुआ है, रसद का कहीं से भी इन्तजाम नही, मरेंगे और झुकेंगे। यह कड़ाई कुछ ही दिनो की और है, आखिर लीडन पर ऐल्वा का अधिकार होगा।

[चला जाता है।

दृश्य बदलता है

एक उच्च परिवार। रसोई घर। स्त्री कुछ भोजन व्यवस्था में लगी सी, चिन्तातुर। दो बच्चे मांगते आते हैं।]

एक बच्चा—कुछ खाने को दे माँ!

माँ—खाने को स्पेन वालो का कलेजा मिले। उन्होने समझ रक्खा है डच कमजोर है भूख से पीड़ित अपने बच्चो को न देख

सकेंगे। अहः [कब्वर्ड मे से सूखा-सा केक का टुकड़ा निकालती है] घर भर मे यही अखीरी लुकमा है। आखिर इससे चार आदमियो का क्या होगा ?

[पिता का प्रवेश, प्यासा-भूखा, लड़खड़ाता, थका, हांपता हुआ चुप आकर खड़ा हो जाता है]

दूसरा बच्चा—ओ माँ! रहने दो, तुम खा लो माँ, तुमने और पापा ने तो तीन दिन से कुछ नही खाया, माँ!

माँ—(आँखो मे आँसू डबडबा आते है) न, न, लो, (अपने पति को खड़ा देखकर) अरे, तुम आगये ? क्या कुछ हो रहा है ?

पिता—हो रहा है, होगा क्या ? शहर भर मे खाने की चीज़ का एक दाना नही, कोने-कोने मे भूख की भयङ्कर पीड़ा का नर्तन है, कै·· ···से होगा ? कुछ तो खाने को चाहिये ? इस पेट की आग कैसे बुझे ? घर मे भी कुछ नही क्या ?

माँ—कुछ नही, यह एक सूखा सड़ा टुकड़ा है, बच्चो को देने जारही थी।

बच्चे—[पिता के पास आ जाते हैं] पिता जी क्या होगा ?

पिता—पुण्य होगा बेटा, जालिमो के जुल्म से मर रहे है। देश स्वतन्त्र रहे, हमे तो मरना ही है। हम लोग स्वतन्त्रता का मूल्य जानते हैं। उसके लिये सारी यातनाये सहेगे, और उन्हे सहने के लिये ज़िन्दा भी रहेगे। जिस चीज़ से भी ज़िन्दा रह

सकेगे रहेगे ...... 'घबराओ मत बच्चो। अभी तो ये पेड़ खड़े है। अन्न नही है पत्तियां ही सही, गाय भेस इन्हे खाते है न ?

बच्चे—पत्तियॉ ?

मॉ—पत्तियॉ ?

पिता—हॉ पत्तियॉ !

माँ—बहुत ठीक बात रही। दो दिन पहिले ध्यान आ जाता तो क्यो इतना सूखते। स्पेन ! हम पत्ते खाकर रहेगे। मरेगे नही और तुझे लीडन पर अधिकार नही करने देगे।

बच्चे—नही करने देगे, नही करने देगे।

[पिता पत्ते तोड़ लाता है, उसी को टेबिल पर रख कर भोजन-व्यवस्था होती है।]

बच्चे—नमक से पत्ते अच्छे लगेगे, नमक है क्या, मॉ ?

मॉ—नमक भी कहॉ रहा है, बेटा !

पिता—यो ही सही, जिस भूमि ने सुख दिया है उसकी रक्षा दुःख झेलकर करनी होगी। अहा ! कैसा स्वाद है इनमे !

[एक अन्य नागरिक का प्रवेश, भूखा लड़खडाता है]

ना०—क्या तुम्हारे पास कुछ खाने को है,मै भूखा मर रहा हूँ।

पिता—हॉ है। मरो मत, हमे आदमियो की जरूरत है। वह देखो पेड़ खड़ा है। उसके यहां का स्वादिष्ट भोजन करो।

ना०—स्वादिष्ट ! ठीक दुःख मे जो स्वादिष्ट है, वही तो सच-मुच स्वादिष्ट है।

[वह भी पत्ते तोड़ कर खाता है। एक दल का दल आता है और पत्ते तोड़कर खाने लगता है।]

पिता—लो, पेड़ भी समाप्त हुआ।

[पर्दा बदलता है। किला, वही पहला भाग। ऐल्वा फिर वहीं दिखाई पड़ता है।]

ऐल्वा—[एक ओर देख रहा है, कुछ देर बाद]……… हद हो रही है। पर इनकी हठ के साथ मेरा क्रोध बढ़ रहा है।

[एक नायक का प्रवेश]

ऐल्वा—क्या बात हुई है? इतने दिन ये लोग कैसे टिक सके?

ना०—महोदय, अब उन्होने पत्ते खाना शुरू कर दिया है।

ऐल्वा—पत्ते खाना शुरू कर दिया है! ग़ज़ब इन भूखो की उद्दण्डता तो ग़ज़ब की है।

[क़िले पर कुछ डच दिखाई देते हैं]

ऐल्वा—वे लोग क्या कुछ कहना चाहते हैं? शायद अब सन्धि चाहते होगे। मै तो समझता था नायक………

डच०—[क़िले से] ऐ, ऐ, राक्षस-अभिमानी! तू अपनी ताक़त खूब अजमा ले। हम आज भूखो मर रहे हैं। पर याद रख

हम चूहे, कुत्ते और चाहे जो कुछ खाकर ज़िन्दा रहेगे लेकिन हार न मानेगे।

ऐल्वा—इस हठ मे लाभ नहीं।

एक डच—लाभ का प्रलोभन देने वाले शत्रु ! हम स्वतन्त्रता का मूल्य समझते है। अपने हक़ और इज्ज़त को जानते है। हम अपनी स्वतन्त्रता के लिए जैसे भी होगा जिन्दा रहेगे। और जब हमारे सिवा कुछ बाक़ी न रहेगा तो . . .

ऐल्वा—तो तो हार मानोगे ही।

दूसरा०—चुप रहो और यक़ीन रक्खो कि तब हममे से हर एक अपने बाये हाथ को खा डालेगा। उसे खाकर जीवित रहेगा।

तीसरा०—और दाहिने हाथ को विदेशी ज़ालिमो से अपनी औरतो, अपनी आज़ादी और अपने घर की रक्षा करने के लिये बचा रखेगा।

ऐल्वा—ह. हः हः। ऐसा ! और जब दाहिना हाथ भी नष्ट हो जायगा तब ?

चौथा०—तब अपने घरो मे आग लगा कर नगर को भस्म कर देगे, किन्तु पराधीनता न स्वीकार करेगे। हार न मानेगे। और तुम्हारे द्वारा अपने घरो को नष्ट न होने देगे।

सब०—सचमुच न होने देगे। हम जीवित रहेगे मरने के

लिये और जीतने के लिये···ओ·· आकाश के देवता तू जितनी चाहे परीक्षा करले। डचो के बच्चे-बच्चे को तू सच्चा और कर्त्तव्यशील पायेगा।

[चले जाते है। सन्नाटा छा जाता है। कुछ देर बाद।]

ऐल्वा—इन मुट्ठी-भर लोगो का निश्चय कितना भीषण है। कुत्ते बिल्लियो की तरह मरेगे। देखूँगा यह ऐठ कब तक है।

[दृश्य बदलता है। लीडन के कुछ अधिकारी]

एक—अब क्या देश को इन नृशंसो के हाथ सौप देना होगा?

दूसरा—जिस स्वतन्त्रता की पूजा मे हमने इतनी बलियाँ दी हैं, क्या उसे यो खो जाने देगे ?

तीसरा—जो डच समुद्र जैसे भयानक शत्रु से हार नही मानता, वह स्पेन से हार मान कर अपने इतिहास को गन्दा नही करेगा।

एक—तो फिर आओ अन्तिम आत्मसमर्पण करे। नगर मे आग लगाकर सब रण मे कूद पड़े।

पह०—पर ठहरो। अभी एक और उपाय है। जब मरना निश्चय है तो यह देख कर मरे कि हमारी भूमि किसी दूसरे की होकर नही रहती, या तो वह डच की है और नही तो किसी की नहीं।

एक—ऐसा क्या उपाय है ?

पह०—है। हमारे मित्र डायक है ! उन्हे बना कर समुद्र पर विजय पाई है। उन्हे तोड़ कर हम शत्रुओ पर विजय पायेगे।

दूसरा—ठीक है; अः दुर्दान्त मनुष्य कितना भयङ्कर हो सकता है, यह रक्तकर्मा स्पेन के शासको से पूछो !

सब—तो यह ठीक रहा, चलो, सब चलो—

चलो-चलो सब वीर धीर, यह अन्तिम आहुति का क्षण है।
नश्वर जग मे नश्वर जीवन, नश्वर तन, नश्वर धन है ॥

[दृश्य बदलता है। किले का वही दृश्य। ऐल्वा और उसका साथी नायक]

ऐल्वा—अभी इन लोगो को होश आया कि नहीं, अब तो मरने से भी बदतर हो गये है।

नायक—आज तो एक दम शान्ति-सी दिखाई देती है, जैसे सब मर गये हो । न कोई आज चुनौती देता दिखाई देता है, न फटकार बताता है। चटाक-पटाक भी नही है।

ऐल्वा—कही भूख से सबके सब ... ..

[एक दम नेपथ्य से ध्वनि सुनाई देती है : 'ऐ स्वतन्त्रता की अनुपम सुन्दरी देवी ! हम डच लोगों के प्राण-पुष्प तुझे भेंट हैं। उन्हे पाकर तू तृप्त हो और बलवती होकर युग-युगान्तर तक तू मनुष्यों को राक्षस होने से बचा'—

एकदम 'भलभल' का शब्द सुनाई देता है। जैसे बांध टूट गया हो]

नायक—यह क्या बात है ? यह शब्द कैसा ?

ऐल्वा—हवा मे कुछ नमी कैसे ? और हवा के साथ सड़ायँध सी भी आ रही है। मानो बरसो से सड़ता घास-पात किसी ने कुरेदा हो।

[एक दूत का बदहवास प्रवेश]

दूत—ग़ज़ब होगया !

ऐल्वा—क्या होगया ?

दूत—डच लोगो ने एक बड़े भारी शत्रु को देश मे घुसा लिया है। अब हमारा कल्याण नही।

[झलझल की आवाज़ बढ़ती जाती है]

ऐल्वा—वह कौन है ?

दूत—वह समुद्र है। डायकें तोड़ दी गई। पानी इधर चला आरहा है। यदि एकदम सेना नही हटाई गई तो सब नष्ट हो जायँगे।

ऐल्वा—ओफ़-ओफ,यह क्या हुआ ? सब मिट्टी मे मिलगया।

नायक—सबको भागने की आज्ञा······

[लोग भागते आते हैं]

लोग १—अरे चलो

२—अरे भागो।

३—बचना मुश्किल है।

४—अरे ठहरो मत जी।

५—उस समुद्र से कौन लोहा लेगा ?

[सब भाग जाते हैं।]

[किले पर चार पांच नागरिक दिखाई देते हैं। उदय होते हुए सूर्य का लाल प्रकाश उनके सूखे उद्दीप्त मुख पर पड़ रहा है, ऐल्वा पर छाया पड रही है।]

[ये नागरिक गाना गाते हैं]

तू प्रलय का गीत गा ले।
खेल झंझा से, चुहल कर, विज्जु-ज्वाला से मचल कर।
अमर साहस कर अरे तू! मृत्यु का वरदान पाले॥

[गाना होता रहता है। परदा गिरता है। कुछ काल सन्नाटा]

[वृद्ध का स्टेज पर प्रवेश]

वृद्ध—भारत, यहाँ आओ।

भारत—गुरुदेव, कैसा उग्र था, यह सब और वह गाना।

तू प्रलय का गीत गा ले।
अमर साहस कर अरे तू! मृत्यु का वरदान पाले।

वृद्ध—न, भारत, उनकी उग्रता न देख कर हृदय के त ग

आग्रह और बलिदान के मूक और दृढ़ स्वागत को देख। बच्चे-बूढ़े अमीर-ग़रीब सभी मर जा सकते थे। पर सभी भूख की असह्य पीड़ा सहते हुए भी जीवित रहे, देश को गुलामी से बचाने के लिये।

भारत---सचमुच अभूतपूर्व त्याग था गुरुवर! स्तम्भित और जड़ कर देने वाला! भारत मे भी······

वृद्ध—हाँ, भारत मे भी देखो। यहाँ भी आज स्वतन्त्रता का युद्ध चल रहा है! यहाँ के नागरिक और नवयुवक देखो क्या कर रहे है? हट जाओ।

[दोनों स्टेज से हट जाते है। पर्दा फटता है।]

[एक छत पर खुला बरामदा, उसमे एक युवक सो रहा है। नीचे सड़क है।]

[नेपथ्य में से आवाज़ आती है।]

"वीरेश, ओ वीरेश"

[खाट पर वीरेश कुछ कुलबुलाता है, फिर शान्त हो जाता है। फिर थोडी देर बाद]

"ओ वीरेश, वीरेश, बेटा! आठ बज गये, उठो!"

[युवक खाट मे से ही उत्तर देता है।]

"क्या होगा कुछ काम है क्या?"

[नैपथ्य से] अरे पढ़ना-लिखना नही क्या ? फेल होना है ? उठ !

युवक—(आधा उठता हुआ) अजी क्या पढ़ना-लिखना ? रात को सिनेमा जो देखा था, सो नींद ही नही खुलती। आप फिकर न करे, मै फेल नहीं हूँगा।

[थोड़ी देर बाद खाट पर बैठ कर]

हः हः हः पास क्या कोई मेहनत से होते है ? क्यो, वीरेश है न, वीरेश ने जो इतने हुनर सीखे हैं तो क्या यो ही। अरे वीरेश तू तो जानता है ? मास्टरो की खुशामद करना, (सिगरेट का बक्स उठा कर सिगरेट मुँह मे देता है) अहहह ! और न बने तो उन्हे आँखे भी दिखा देना, (दियासलाई जलाने का उपक्रम करता है) और वह जो मास्टर साहब है उन्होने कह ही दिया है कि हम हिंट बता देगे। फिर फेल कैसे हूँगा। हहह, पिताजी क्या समझे कि उनका यह पुत्र वीरेश (सिगरेट का धुँआ उड़ाता हुआ) कितना होशियार, कितना क़ाबिल, कितना चतुर है। अरे, अभी कोई चाय नही लाया (सिगरेट का धुँआ फेंकते हुए घण्टी बजाता है)

[नैपथ्य से—' जी ']

वीरेश—चाय लाओ, जी का बच्चा, सो रहा है अभी—हहह हह।

(सिगरेट की धूल झाड़ता हुआ) मै क्या कोई राम की तरह

अहमक हूँ। पढ़ना-पढ़ाना या फिर इधर-उधर देश-सेवा (मुँह बना कर) देश-सेवा-हहह।

[सड़क पर राम का प्रवेश]

(खद्दर के कपड़े हैं, आवाज़ देता है) "वीरेश ! वीरेश !"

वीरेश–चले आओ भाई, राम ! इतने जोर से चिल्लाने की जरूरत नही। जाग पड़ा हूँ, आज तो ! बैरा दो कप–(राम ऊपर पहुँचता है।)

वीरेश–हल्लो राम ! अच्छे हो, कहाँ से आ रहे हो ?

राम–मै ! आज स्वतन्त्रता दिवस था।

वीरेश–हाँ, मै भी वही मना रहा था भाई ! खूब स्वतन्त्र होकर सोया हूँ। और मेरा तो ऐसा स्वतन्त्रता दिवस रोज ही मनता है। अच्छा तो आप प्रभातफेरी करके, झण्डा फहरा के, झण्डे का गान गाके, सारे शहर को जगा कर, और मुझे जगाने आये है। सोचा होगा कि सो रहा होगा, क्यो ?

राम–मैने तो यह सोचा था कि तुम आज जरूर प्रभात-फेरी मे आओगे। रात को वादा जो किया था।

वीरेश—न भाई ! वादा मुझसे कभी पूरा हुआ है कि आज ही होगा। रात को सिनेमा सैकिंड शो मे गया। देर मे आया तो सुबह आँखे खुलती है ? देखो भाई साफ-साफ बात है। मुझे तुम्हारे

काम से बहुत हमदर्दी है। देश स्वतन्त्र हो जाय इसे कौन नही मानेगा ? जिसने शैक्सपियर पढ़ा है, मिल्टन पढ़ा है, कार्यालय पढ़ा है, कौलैरा पढ़ा है।

राम—कौलैरा कौन 'हैजा।

वीरेश—धत्, नही यार ! वह जिसका ज़िक्र किया करते है मास्टर साहब दर्जे मे, जिसने किसी बुड्ढे मेरीनर—

राम—अरे आपका मतलब कालरिज से है।

वीरेश—हॉ, तो, हः हः तुम यही कहो ! जिसने इतना सब पढ़ा है वह क्यो न स्वतन्त्रता के लिये हमदर्दी रक्खेगा, पर भाई ! देखो खद्दर मोटा होता है, पहन नही सकता। चाय बीड़ी की लत पड़ी हुई है, छोड़ नही सकता। सुबह की मीठी और मधुर नींद छोड़ नही सकता। सिनेमा देखने को तो मन चलता ही है। वह नही छोड़ सकता। गरज कि जैसा मै हूॅ अगर वैसा ही कुछ स्वतन्त्रता के काम आ सकूॅ तो अच्छा है, समझे !

राम—हमारे देश का दुर्भाग्य ! भाई तुम सॅभलो !

वीरेश—मेरे न सॅभलने से कोई क्या बड़ा नुक़सान है ? तुम सॅभले ही हुए हो, या नहीं, बस !

राम—देखो व्यंग की आदत छोड़ो, तुम अपना · ·

वीरेश—मेरे अकेले से क्या ?

राम—तुम अकेले नही हो, देखो नीचे सड़क पर देखो। यह जो आदमी आ रहा है, यह भी तुम हो और उसके साथ जो आ रहा है वह भी तुम हो।

[सड़क पर दो सूटेड-बूटेड व्यक्तियों का प्रवेश]

एक—यार, मेरे तो पन्द्रह-सोलह रुपये महीने मे सिगरेटो मे ही व्यय हो जाते है। क्या पूछते हो, देखो यह बिल, (जेब से काग़ज़ निकाल कर दिखलाता है) फिर ब्यूटी की फिराक रहती है।

दूसरा—यार ब्यूटी तो है ही, देखिये इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के वाइस चॉसलर ने कनवोकेशन ऐड्रेस मे कैसा बताया कि भारत वालो को ब्यूटी लवर होना चाहिये।

[दोनों चले जाते हैं]

राम—देखा वीरेश, डाक्टर "झा" के भाषण का इन दो मनचले युवको ने जो अर्थ लगाया है, वैसा तुम भी न लगा सके होगे। है न, और देखो यह जोड़ा भी तुम्हीं हो।

[दो व्यक्तियों का प्रवेश]

एक—जनाब जब गॉव मे जाता हूॅ व्याख्यान देने, तब तो खद्दर ही पहन के जाता हूॅ, यो घर पर कौन देखता है ?

दूसरा—भाई, देखो हम तो एक बार भड़प्पे मे कांग्रेस की ओर से जेल हो आये हैं, बस अब कांग्रेस सरकार है। मजे मे ग्राम-

सेवक हैं। गाँव मे रहते है झूठी-सच्ची डायरी भरी रुपये वसूल किये। बिल्कुल पेशन मिल रही है। किसी के आने की बात हुई तो जरा इधर-उधर भाग-दौड़ करली, बस।

[दोनों चले जाते हैं]

राम–देखो वीरेश, वह दो और आ रहे हैं।

[दो व्यक्तियों का प्रवेश, गाते हुए]

हम तुम पर दीवाने थे, तुम हम पर दीवाने हो।

एक–यार क्या आशिकाना तबियत पाई है। जरा आज शाम को फिर चलना।

दूसरा–शाम को ?

एक–और क्या।

दूसरा–शाम को तो जुलूस निकलेगा। आजादी-दिवस है।

एक–तो क्या हुआ ? उसके बाद चले चलेगे भाई, उसके लहजे-लहजे मे नजाकत है। बोलती है मानो मिश्री घोलती है।

[चले जाते हैं]

राम—और देखो वीरेश यह दो और आये।

[दो व्यक्ति हाकीस्टिक लिये खिलखिलाते आते है]

एक—सिर फोड़ देता, या टॉग तोड़ देता, पर वह सामने ही नही आया !

दूसरा—पर यार, कुछ कालेज का काम भी किया है ?

एक—खेलने से फुरसत हो तब न ! तुम देख, रहे हो, आज तीन मैच खेले !

दूसरा—और तुमने लिट्रेसी डे को प्लैज भरा था ?

एक—मै क्या अहमक हूँ, भाई कौन भरे ? सब झूठ-मूठ की कारिस्तानी है। छोड़ो, शाम को मैच देखने आओगे ?

दूसरा—ज़रूर।

[चले जाते हैं]

राम—देखा तुमने, तुम अकेले नहीं। तुम ठीक हो जाओ तो यह सब ठीक हो जाये। तुम समझो मेरे भाई कि देश को स्वतंत्र करने के लिये अधिक से अधिक कार्य करने की जरूरत है। [बैरा चाय लाता है]

वीरेश—[चाय का प्याला उठाते हुए] मुझ से तो न होगा। देश स्वतन्त्र हो या न हो।

[परदा गिर पड़ता है]

वृद्ध-भारत !

भारत-[पास आता है और रोता है]

वृद्ध–भारत, रोने से काम नहीं चलेगा!

भारत–मेरे हृदय मे कितनी वेदना हो उठी है, गुरुदेव! जिस देश मे स्वतन्त्रता का संघर्ष छिड़ा हो, वहाँ के युवक केवल जलूसो मे भाग ले, व्याख्यान सुने, और हल्ला मचावे, मिल-जुलकर नटखटपन करे, और फिर दूसरे क्षण ही भारत को भूल जाये, मा! तुम्हारे पैंतीस करोड़ पुत्र–

वृद्ध–इन्हे चेताओ भारत! जीवन मे ईमानदारी की सब से बडी जरूरत है। जीवन मे एक स्वतन्त्र होने वाले नागरिक मे एक आग और शक्ति की जरूरत है। स्वतन्त्र होने वाले देश के युवको मे अव्वल दर्जे की मुस्तैदी होनी चाहिये। जागो, ए भारत के नौनिहालो जागो! देश की आवश्यकताओ को समझो। इतनी शक्ति प्राप्त करो कि चौबीसो घण्टे काम कर सको।

[नेपथ्य में]

भारत माता की जय! भारत माता की जय!!
भारत माता की जय!!!

[पटाक्षेप]

———